संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

वर्ष 25 सितम्बर 2015 अंक 24

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति, नास्ति द्रव्यमनौषधम्।
अयोग्य पुरूषोनास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः ।।

आयुर्वेद सुभाषितम्

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2015
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975-4342

संरक्षक एवं प्रधान सम्पादक	:	डॉ. परमजीत सिंह
सम्पादक मण्डल	:	डॉ. बी. के. सिन्हा
		डॉ. एस. एस. दाश
		डॉ. पुष्पा कुमारी
		श्री संजय कुमार
सहयोग	:	श्री संजीव कुमार

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र

एन्ड्रोथ द्वीप, लक्षद्वीप

सौजन्य : डॉ. पी. लक्ष्मीनरसिम्हन

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1. अल्मोड़ा जनपद (कुमाँऊ हिमालय) की वन एवं वनस्पतियाँ : एक पूर्वालोकन : कुमार अम्बरीश, अरविन्द कुमार एवं एस. के. श्रीवास्तव 1
2. लक्षद्वीप की जैव विविधता : आरती गर्ग, पी. लक्ष्मीनरसिम्हन एवं पुष्पी सिंह 4
3. उत्तराखण्ड हिमालय का प्रसिद्ध दयारा बुग्याल : संरक्षण और संवर्धन : संजय कुमार एवं एस. एस. दाश 9
4. गोविंद पशु विहार वन्यजीव अभयारण्य, पश्चिमी हिमालय के संकटग्रस्त औषधीय पौधे : आर. मणिकंदन, एस. के. श्रीवास्तव एवं संजय उनियाल 13
5. पार्वती अरंगा वन्य जीव अभयारण्य, तराई क्षेत्र (गोंडा) , उत्तर प्रदेश की जैव–विविधता : विनीत कुमार सिंह एवं एस. के. श्रीवास्तव 18
6. रानीपुर वन्य जीव विहार की वानस्पतिक विविधता एवं उपयोगी पौधे : अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं भोलानाथ 22
7. मालाबार वन्य जीव अभयारण्य, केरल की एक झलक : जे. एच. फ्रेंकलिन बेंजामिन एवं राकेश जी. वाद्यार 28
8. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केन्द्र, गान्तोक के वानस्पतिक उद्यान की पादप विविधता एक अवलोकन : चन्दन सिंह पुरोहित 31
9. अरूणाचल प्रदेश के तवांग जिले की उच्च पर्वतीय आर्द्र भूमि और उसका संरक्षण : एच. एस. महापात्र 37

अपुष्पीय वनस्पति

10. क्लोरेला का औषधीय उपयोग एवं स्वास्थ्यवर्धन में योगदान : प्रतिभा गुप्ता 39
11. पादप जीवाश्म : राजमहल की पहाड़ी, झारखण्ड : आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास 40
12. मंदार पर्वत की हरितोद्भिद विविधता : एक सिंहावलोकन : देवेन्द्र सिंह 42

चिरपरिचित वनस्पति

13. ब्राह्मी : आयुर्वेद की एक सुविख्यात व संदिग्ध वनस्पति : अम्बर श्रीवास्तव, बृजेश कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 44
14. हल्दी के विभिन्न रूप व उनके उपयोग : अम्बर श्रीवास्तव, पुष्पेश जोशी, संजय उनियाल एवं देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक 48
15. संकटग्रस्त वृक्ष "बीजा साल"का औषधीय महत्व : कुमार अम्बरीश एवं संजय उनियाल 52
16. अंजीर– एक बहुगुणीय औषधीय वनस्पति : पूजा गुप्ता एवं भोलानाथ 53
17. बालमखीरा (*किगेलिया अफ्रीकाना*) : एक बहुउपयोगी वनस्पति : वीरेन्द्र मधुकर, अम्बर श्रीवास्तव एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 55
18. वनककड़ी (*सिनोपोडोफायलम हेक्सेड्रम*) के औषधीय उपयोग एवं संरक्षण नीति : आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह 56
19. औद्योगिक अनुभाग की वनस्पति गैलरी स्थित रेशा प्रदत्त पौधो का परिचय : ए. के. साहु, बी. के. सिन्हा एवं सुदेशना दत्ता 57
20. गठिया (आर्थिराइटिस और रूह्मेटिज्म) के निदान में सहायक औषधीय पौधे : कुलदीप सिंह डोगरा 60

नृ–वनस्पति

21. अण्डमान निकोबार द्वीप समूहों के आदिम जन–जातिय औषधीय पादप : विनोद मैना, रमेश कुमार एवं बी. के. सिन्हा 64

22. ओडिशा के आदिवासियों में वनस्पतियों से संबंधित कुछ प्रचलित लोक–विश्वास : हरीश सिंह 72
23. सेमल पर नेजा – परंपरागत मान्यता द्वारा सरंक्षण की अनूठी प्रथा : वर्तिका जैन एवं एस. के. वर्मा 78

तकनीकी परिदृश्य

24. *पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* –उत्तराखण्ड राज्य की स्थानीय, संकटापन्न, औषधीय एवं बहुआयामी प्रजाति का सूक्ष्म प्रवर्धन विधि द्वारा संरक्षण : गिरिराज सिंह पंवार 81
25. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान की झीलों पर प्रदूषण का प्रभाव एवं उसका उपचार : बसंत कुमार सिंह एवं हिमांशु शेखर महापात्र 86
26. जैव प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण प्रबंधन : नितिषा श्रीवास्तव एवं सुबीर सेन 88
27. राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण : पर्यावरण संरक्षण के लिए एक विशेष कोर्ट : भरत गुप्ता 91

यात्रा वृतांत

28. सूर्योदय की धरती : अरूणाचल प्रदेश की एक यात्रा : ऋजुपालिका रॉय, बसन्त कुमार सिंह एवं अरविंद प्रमाणिक 92

व्यक्तित्व

29. प्रो. एच. पी. गांधी (1920–2008) : भारतीय डायटमोलोजिस्ट : आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास 94

काव्यांजलि

30. सायनोजीवाणु की सर्वव्यापी विविधता : प्रतिभा गुप्ता 96
31. यदि बचें रहेगें बाघ वनों में : भोलानाथ 97
33. पर्यावरण : आर. के. गुप्ता 98
33. भारत की विविधता : संजय कुमार 99
34. बनाओ सतुंलन : भरत गुप्ता 100
35. धरा की करूण पुकार : देवेन्द्र सिंह 101
36. स्वच्छ निर्मल भारत : रवि प्रसाद 102
37. पौधे की दास्तान : संजय उनियाल 103

पटाक्षेप

38. पर्यावरण समाचार : संजीव कुमार दास एवं संजय कुमार 104
39. राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु 106
40. लेखकों के लिए निर्देश 107

अल्मोड़ा जनपद, कुमाँऊ हिमालय की वन एवं वनस्पतियाँ : एक पूर्वालोकन

कुमार अम्बरीश, अरविन्द कुमार एवं एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

कुमाँऊ, हिमालय के पश्चिमी भाग में स्थित "उत्तराखण्ड" राज्य का एक विशिष्ट मंडल है, जिसके अंतर्गत 6 जिले क्रमशः अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, बागेश्वर, नैनीताल, चम्पावत एवं ऊधमसिंह नगर विद्यमान हैं। यह क्षेत्र अपनी अनुपम सांस्कृतिक धरोहर एवं पौराणिक सभ्यता के साथ–साथ जैव विविधता के दृष्टिकोण से भी अति विशिष्ट है। इस क्षेत्र में महा पाषाणकाल से ही मानव अस्तित्व के पुरावशेष मिलते रहे हैं। मंडल के देवीधूरा, लखुअड्डयार, जौला और जैनल नामक स्थानों में ऐसे साक्ष्य अभी भी विद्यमान हैं। देवीधुरा के वाराही मन्दिर में प्रत्येक वर्ष रक्षाबंधन के दिन आज भी पाषाण युद्ध खेला जाता है, जिसमें दो दलों के द्वारा एक दूसरे पर पत्थर फेंक कर विजय निर्धारित की जाती है। विजयी दल को उचित सम्मान एवं पुरूस्कार भी दिया जाता है। कुमाँऊ में गंगा घाटी सभ्यता संबंधी पुरावशेष भी उपलब्ध होते हैं। वैदिक युग में इस क्षेत्र को "उत्तर कुरू" कहा जाता था। पौराणिक ग्रन्थों एवं रामायण, महाभारत काल में यहाँ निवास करने वाली यक्ष, गंर्धव, किन्नर, किरात, नाग, कुर्णिदों के युग से इस क्षेत्र का क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होता है। तीसरी से पांचवी सदी तक कुमाँऊ में पौरव वंशी शासकों ने शासन किया। सातवीं से बारहवी सदी तक कत्युरी एवं खस सम्राटों का इस क्षेत्र पर आधिपत्य रहा। इसके बाद चन्द्रवंशी शासकों ने यहाँ शासन किया। रूहेलों ने भी सन् 1745 ई. से स्वाधीनता आन्दोलन में इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

कुमाँऊ का अल्मोड़ा जिला हिमालय के मध्य भागमें 29°35'410" उत्तरी अक्षांश और 79°31'653" पूर्वी देशान्तर के मध्य बसा हुआ है। जिसका क्षेत्रफल 3082 वर्ग किमी है। भूभाग के आधार पर कुमाँऊ को तीन भागों में बांटा जा सकता है। (क) महा हिमालयी भू भाग, (ख) मध्य हिमालयी भू भाग (ग) तराई भू–भाग। प्रारम्भ में कुमाँऊ मण्डल में दो जनपद अल्मोड़ा एवं नैनीताल थे। बाद में अल्मोड़ा जनपद को दो भागों में विभाजित कर एक नया जनपद पिथौरागढ़ बनाया गया। सन् 1965 के बाद नैनीताल जिले से तराई क्षेत्र को अलग कर ऊधमसिंह नगर जनपद, अल्मोड़ा जिले से बागेश्वर जनपद तथा पिथौरागढ़ जिले से चम्पावत जनपद सृजित किये गए।

जलवायु एवं मिट्टी – अल्मोड़ा जिले में ऊंचाई एवं भौगोलिकी में परिवर्तन के साथ जलवायु में भी विभिन्नता पायी जाती है। निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों (900–1800मी.) के मध्य मौसम गर्म रहता है। तथा गर्मियों में तापमान 40°सें.ग्रे. तक पहुंच जाता है जबकि ऊंचाई वाले क्षेत्रों (1800–2500 मी.) रानीखेत, द्वाराहाट, कौसानी, सोमेश्वर, कोसी, जागेश्वर, मोरनाला, ताड़ीखेत आदि में मौसम सर्दियों में अत्यधिक ठण्डा होता है

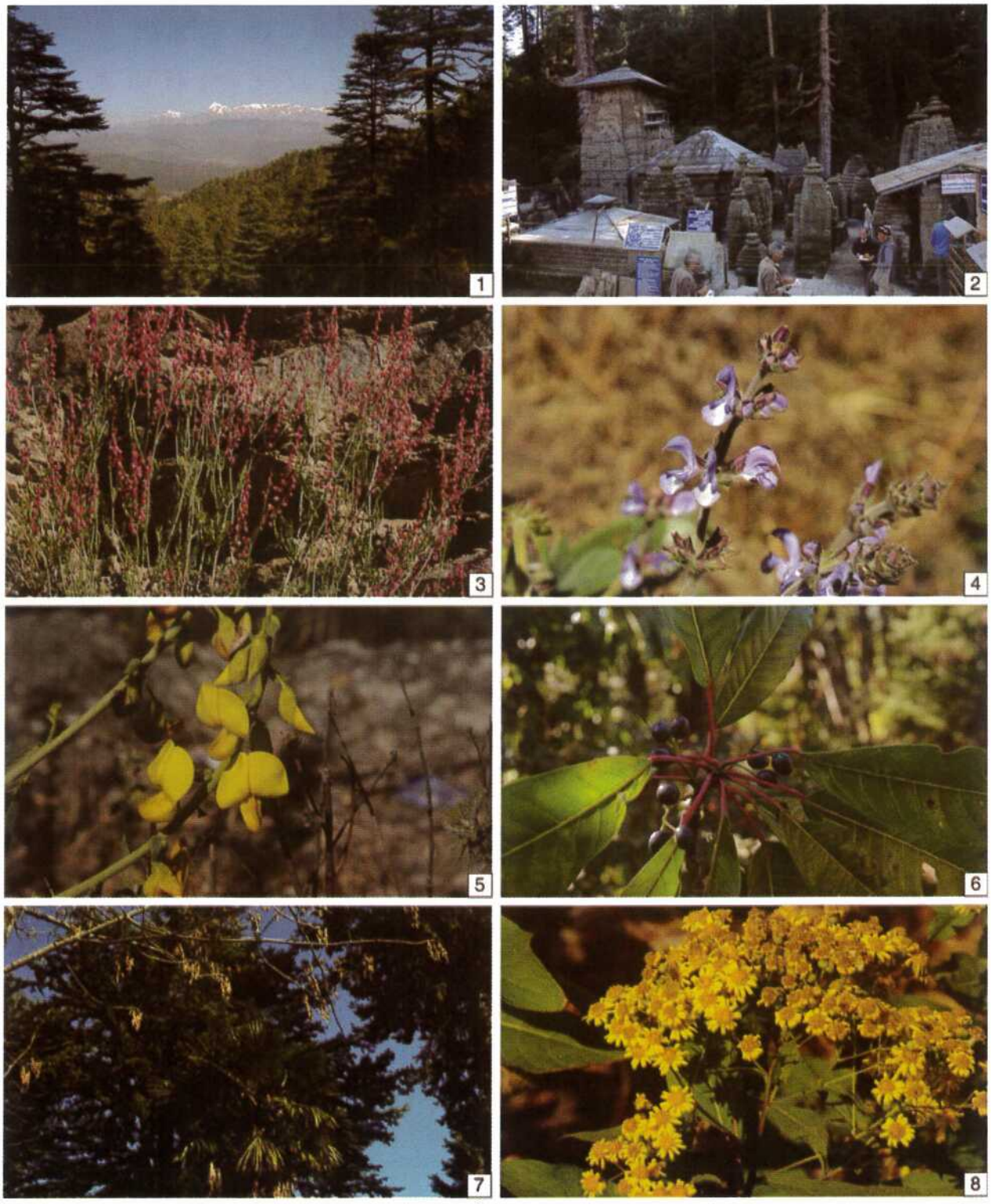

1. शीतोष्ण वन, लामगढ़ 2. जागेश्वर धाम में मंदिरों की श्रृंखला, 3. *रयूमैक्स हेस्टाटस*, 4. *साल्विया मुर्खजीयाना*
5. *क्रोटोलेरिया स्पैक्टाबिलस* 6. *डेफ्नीफाइलम हिमालेन्सिस* 7. *ट्रेकिकार्पस टाकिल* 8. *इनुला कस्पीडाटा*

एवं बर्फबारी भी होती है। यहां पर मुख्यतः दोमट–बलुई एवं काली मिट्टी पायी जाती है, जिसमें ह्युमस अधिक होता है। इसलिये यहाँ पर धान, मंडुआ एवं दालें (गहत, उड़द, राजमा) फसलें प्रचुर मात्रा में उगायी जाती हैं। इसके साथ ही नाना प्रकार के फलों के वृक्ष जैसे संतरा, सेब, नींबू, पुलम, आडू तथा जंगली फलों वाली क्षुप, शाक एवं लताऐं बहुतायत में पायी जाती हैं।

वन, वनस्पतियां एवं वानस्पतिक सर्वेक्षण– प्रथम लेखक ने अल्मोड़ा जिले के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक वानस्पतिक सर्वेक्षण दिनांक 25.11. 2013 से 10.12.2013 तक किये हैं, जिनमें पादप नमूनों के 230 फील्ड नम्बर, 180 जातियां एकत्रित की हैं। पादपों का सर्वेक्षण मुख्यतः मोरनाला, लमगारा, सारफाटक, कल्यानी आश्रम, सूआकान, जागेश्वर, धौलादेवी, अल्मोड़ा, कोसी, कौसानी, रानीखेत, ताड़ीखेत, कुकुचाइना, पांदुखोली, नायल इत्यादि क्षेत्रों से पादपों के नमूने एकत्रित किये। जिनमें से चार संकटग्रस्त जातियों के जीवित नमूने भी एकत्रित किये गये, जिनमें *डेफनीफायलम हिमालेन्स, ट्रैकिकार्पस टाकिल, सीलोगायिन फ्लैसीडा, बल्बोफायलम* की जातियां सम्मलित हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं, क्षुपों, शाकों एवं आर्किडों की विभिन्न जातियां भी एकत्रित की गयी हैं।

अल्मोड़ा जिले के वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान जिस प्रकार के वन एवं वनस्पतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं उनका संक्षेप में विवरण निम्न प्रकार है।

समशीतोष्ण-उपोष्ण कटिबंधीय वन – अल्मोड़ा जिले में 900 मी. से 1800 मी. के मध्य इस प्रकार के वन पाये जाते हैं। इन वनों में मुख्यतः *पाइनस राक्सबर्घाई* के विशुद्ध वन एवं कहीं–कहीं पर *शोरिया रोबुस्टा, केशिया फिस्टुला, सेमीकार्पस एनाकार्डियम, टर्मिनेलिया बेल्लीरिका, सीड्रस देवदारा, डिप्लोनीमा ब्यूटेरेशिया, डेफ्नीफाइलम हिमालेन्सिस, रोड़ोडेन्ड्रान आरबोरियम, क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, फाइकस ओरीकुलाटा* आदि के मिश्रित वन पाये जाते हैं। यहाँ की अन्य वनस्पतियों में *इकीनोप्स कारनीजेरस, बरबैकसम थैप्सस* (जंगली तम्बाकू), *उस्बेकिया स्टीलाटा, हाइपेरिकम हिमालेन्सिस, क्रोटालेरिया स्पैक्टाबिलिस, रयूमैक्स हेस्टाटस, इनुला काप्पा, इ. कस्पीडाटा, एनाफोलिस* एवं एस्टर की जातियां भी पायी जाती हैं।

शीतोष्ण वन– इस प्रकार के वन 1800 से 2800 मी. के मध्य मिलते हैं इनमें मुख्यतः *क्वेरकस* (बांज) की जातियाँ, *सीड्रस देवदारा, रोडोडेन्ड्रान आरबोरियम* (बुरांश), *मेरिका एस्कुलेन्टा, एसर, फ्रक्सीनस माइकारैंथा* (अंगू), *लायोनिया आवेल्फोलिया* (ऊंथार),*एल्नस नेपालेन्सिस* (उतीस), *प्रूनस अरमानिका* (खुबानी) आदि वृक्ष प्रजातियां पायी जाती हैं। इसके साथ ही यहाँ पर अन्य वनस्पतियों में*रूबस इल्पेटिकस* (हिंसालू), *बरबेरिस एशियाटिका, साल्विया मुर्खजीयाना,* ऐस्टर की जातियां, *रिनवार्टिसिया इंडिका* (फ्योंली), इंपेशियंस की जातियाँ व विभिन्न रंगों के आर्किड्स जैसे*सेट्रियम नेपालेन्सिस, सिलोगाईन, डेन्ड्रोबियम, इरिया* एवं*वांडा* की जातियाँ भी पायी जाती हैं। यहां पर पांडूखोली क्षेत्र में टाकिल पाम (*ट्रेकिकार्पस टाकिल*) की एक दुर्लभ एवं स्थानिक प्रजाति भी पायी जाती है।

शीतोष्ण उपहिमाद्री वन– ये वन 2800 से 3200 मी. के मध्य पिथौरागढ़ जिले की सीमा पर पाये जाते हैं। जिनमें मुख्यतः *क्वेरकस, मिरिका, रोडोडेन्ड्रान,* की प्रजातियां*सीड्रस देवदारा, क्यूपरेस्स टारूलोसा* एवं *एबीज स्पैक्टाबिलिस* आदि वृक्ष मुख्य हैं। इस क्षेत्र में अमूल्य औषधीय पौधे जैसे *वैलेरियाना हार्डविकी* (सुमाया), *अरनीबिया बैंथामी* (बाल छड़) , *नारडोस्टाइकस जटामांसी, डैक्टाईलोराइजा हथाजरिया, पोडोफिल्लम हैक्जैन्ड्रम* (वन ककड़ी) आदि भी पाये जाते हैं।

संकटग्रस्त, विलुप्तता की कगार पर खड़ी प्रजातियां– अल्मोड़ा जिले में कई प्रकार की औषधीय तथा सजावटी वनस्पतियां संकटग्रस्त व विलुप्त होने की कगार पर खड़ी हैं। ये प्रमुख वनस्पतियां हैं–*ट्रेकिकार्पस टाकिल, डेफ्नीफाइलम हिमालेन्स, रूबस एलमोरेन्सिस, वायोला कुनावारेन्सिस, टीनोस्पोरा कार्डीफोलिया, एसरसिशियम, एस्टर थोम्सोनाई, केलेन्थी एलीस्मीफोलिया, डेन्ड्रोबियम नार्मेली, वेन्डा क्रिस्टाटा, सिलेस्ट्रस पैनीकुलाटस* इत्यादि।

संक्षेप में आलेख का आशय यह है कि उत्तराखण्ड के कुमाँऊ मण्डल एवं विशेषकर अल्मोड़ा जिले में बहुमूल्य जैव विविधता समाहित है, जो जल, कृषि, वानिकी, ऊर्जा, इकोटूरिज्म आदि स्रोतों के लिए उपयुक्त संसाधन हैं। परन्तु मानवीय दबाव, विभिन्न अजैविक एवं जैविक कारकों से इस पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं, अतः इनके संरक्षण एवं सतत विकास के उपाय करना नितांत आवश्यक है, जिससे इस भविष्य की धरोहर को सुरक्षित रखा जा सके।

लक्षद्वीप की जैव विविधता

आरती गर्ग, पी. लक्ष्मीनरसिम्हन*एवं पुष्पी सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

लक्षद्वीप भारत के दक्षिण पश्चिम अरब सागर में स्थित ऐसा भारतीय द्वीप समूह है, जिसकी प्राकृतिक सुन्दरता अद्वितीय है तथा यहाँ की जैव विविधता विश्वविख्यात है। यह द्वीप समूह अरब सागर मे 8^0–12^0 30′ उत्तरी अक्षांश और 71^0– 74^0 पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है तथा समस्त केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे छोटा है। यहाँ के 27 द्वीपों में 3 प्रवाल भित्तियों (कोरल रीफ्स –बेलियापी, चेयिपनी तथा पेरूमलपार) और 6 जलमग्न तट (बस्सासदीपेड्रो, सेसोस्ट्रिस, कोरा, दिव्ह, अमीनी, पित्ती तथा कलपेनी) हैं। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल 32 वर्ग कि.मी. है तथा यहाँ का विशाल समुद्रतल अर्थात लैगून 4200 वर्ग कि.मी. है। 27 द्वीपों में से केवल 10 द्वीप समूहों में ही जन–जीवन है, जो इस प्रकार है – आगाती, अमीनी, एन्ड्रोथ, बिट्रा बनगारम, कादमत, कलपेनी, कवाराती (राजधानी) किलटन और मिनिकाय। ये द्वीप समूह भारत के पश्चिम तट (केरला, कोचिन) से 220–440 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। लक्षद्वीप में गर्म व नम उष्णकटिबंधीय जलवायु पाई जाती है तथा तापमान 17^0–37^0 तक रहता है, आर्द्रता दक्षिण पश्चिमी मानसून के दौरान, सर्वाधिक 70 प्रतिशत तक रहती है तथा औसतन 1000–2000 मि.मी. के बीच वर्षा होती है। संस्कृत में लक्ष का अर्थ लाख अर्थात लाख द्वीप होता है, पूर्व समय में जब नाविकों ने इस द्वीप को देखा तो उन्हें एक साथ कई द्वीप दिखाई पड़े जिस कारण उन्होंने इस समूह को लक्षद्वीप का नाम दिया। उसी समय से यह स्थान इसी नाम से प्रचलित है।

लक्षद्वीप का इतिहास बहुत ही रोचक है तथा इसके विषय मे केवल दन्तकथाएं ही प्रचलित है। ऐसी मान्यता है कि इस द्वीप समूह पर पहली आबादी केरल के अन्तिम शासक चेशमन पेरुमल के समय मे स्थापित हुई थी। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि जब चेशमन इस्लाम धर्म अपना कर मक्का के लिए बिना बताए चले गये तो उन्हें ढूंढने के लिए समुद्र के रास्ते से अनेक दल भेजे गए। किसी तरह इस दल के सदस्य उन द्वीपों तक जा पहुँचे जो अब लक्षद्वीप के नाम से जाने जाते हैं। यह लोग सबसे पहले बंगारम द्वीप पहुँचे तथा फिर अगाती द्वीप तक गए। बाद में यह दल मुख्य भूमि पर वापस आ गया था। रास्ते में उन्हें और भी कई द्वीप दिखाई पड़े थे। वापस आकर इन लोगों ने उन द्वीपों के विषय में लोगों को

बताया और इनके विवरण से प्रभावित होकर नाविकों तथा फौजियों का एक समूह उन द्वीपों की ओर गया। अमीनी द्वीप तक पहुँच कर इस समूह ने यहाँ बसेरा कर लिया था। सातवीं सदी में इन द्वीपों पर पल्लव वंश का अधिकार था। ऐसा माना जाता है कि अगाती, अमीनी, एन्ड्रोथ तथा कवाराती द्वीपों पर सबसे पहले आबादी हुई थी ।

ग्यारहवीं शताब्दी में लक्षद्वीप पर चोल शासकों का अधिकार था। इसके बाद इन द्वीपों का शासन चिरक काल के राजाओं के अधीन चला गया तथा फिर सोलहवी शताब्दी में यह कन्ननोर के अश्ककाल शासकों के अधीन रहा। यहाँ के निवासी इस शासन से प्रसन्न नहीं थे। अतः इस संदर्भ में उन्होंने टीपू सुल्तान से आग्रह किया कि इन द्वीपों को वह अपने कब्जे मे लें। तत्पश्चात टीपू सुल्तान ने इनमें से पांच द्वीपों को अपने अधीन कर लिया, लेकिन 1799 में टीपू सुल्तान को अंग्रजों से परास्त होने पर इन पांच द्वीपों पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का कब्जा हो गया। तत्पश्चात ईस्ट इंडिया कम्पनी ने छल से दूसरे द्वीपों पर भी अपना कब्जा जमा लिया। अतः यहाँ का इतिहास बहुत अस्थिर रहा किन्तु यहॉ की जीवनशैली बहुत ही आम व सादगी भरी है।

लक्षद्वीप के चारों तरफ स्थित समुद्रतल अर्थात लैगून है। यहाँ के द्वीप समूह समुद्र तल से अधिक ऊँचाई पर नहीं है सभी द्वीपों का ऊपरी भाग समतल है, जिसके कारण इन्हें समुद्र की ओर से आने वाली तेज हवाओं का सामना करना पड़ता है, इसी कारण से यहाँ के समुद्र तट को झंझा तट के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त इस पूरे समूह मे बंगारम ऐसा अकेला द्वीप है, जिसके चारों ओर रेतीले तट है। यहाँ के समुद्र तट पर दूर तक फैली सफेद रेत जहाँ खत्म होती है, वहीं से झूमते–नाचते नारियल के पेड़ों का झुण्ड शुरु होता है, समुद्र का पानी दूर दूर तक फैला हुआ हरी नीली चादर सा प्रतीत होता है, पानी इतना साफ होता है कि पानी के नीचे मूंगे और जीव जन्तु साफ दिखाई देते हैं।

लक्षद्वीप की वानस्पतिक विविधता का अध्ययन सर्वप्रथम डेविड प्रेन द्वारा अठारवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। सन 1889 में उन्होंने लक्का दीवे (लक्षद्वीप) की वनस्पति सूची प्रकाशित की। इस प्रकाशन के पश्चात् लक्षद्वीप की वानस्पतिक विविधता से संबधित कार्यों को एक नयी दिशा मिली। 1892 से 1894 के अंतराल में प्रेन ने तीन श्रृंखलाओं के प्रकाशन के माध्यम से लक्षद्वीप के प्राकृतिक इतिहास एवं प्रमुख वनस्पतियों का वर्णन किया। तत्पश्चात, उन्नीसवीं सदी में विलिस ने लक्षद्वीप के सम्पूर्ण क्षेत्र का भ्रमण किया तथा 1901 में इन्होंने मिनीकॉय द्वीप का वनस्पति जात (फ्लोरा) प्रकाशित किया। सन 1924 में एल्लिस ने लक्षद्वीप तथा मिनीकॉय का विवरण दिया। इस विवरण के पश्चात् सन 1960 तक लक्षद्वीप के संदर्भ में एक बड़ा शून्यकाल रहा तथा यहाँ की वनस्पतियों के संबंध में कोई भी कार्य नहीं हुआ। 1960–1961 में वैज्ञानिक बी. एम. वाधवा ने लक्षदीप, मिनीकॉय तथा अमिनिद्विप की वनस्पतियों के अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए शोध कार्य किये जिसके फलस्वरूप बहुत से वैज्ञानिक इस ओर आकर्षित हुए तथा लक्षद्वीप की वानस्पतिक विविधता पर अध्ययन प्रारम्भ किया। इनमें प्रमुख कार्य 1971 में आर. आर. रॉव, 1972, 1977 में आर. आर. रॉव तथा ए. आर. के. शास्त्री, 1977 में मन्नादीयस, 1981 में शिवदासन तथा जोसफ, 1986 में वाफार, 1995 में कृष्णस्वामी और 1995 में ही राव तथा एल्लिस हैं। इसी दौरान 1995 में ए. वी. भट्ट, एस. राजशेखरन तथा पी. पुष्पांगदन ने वर्ष 1977 तथा 1992 में इस द्वीप समूह के औषधीय वानस्पतिक सर्वेक्षण के आधार पर यहाँ के औषधीय पौधों का विवरण प्रस्तुत किया, जिसमें कुल 53 औषधीय पौधों के साथ 28 ऐसे औषधीय पौधों का भी व्याख्यान है, जो यहाँ के जनसाधारण द्वारा औषधीय के रूप में उपयोगी होते हैं, ये निम्न प्रकार से है –*एकोरेस केलेमस, एयर्वा लेनेटा, आर्जिमोन मेक्सीकाना, बेकोपा मोनेरी, सीसलपिनिया क्रिसटा, केलोट्रोपिस जिगांटिया, कोलूब्राइना एशियाटिका, क्यूमीनुम सिमिऊम, सिंबोपोगोन सीटरटस, डोडोनिया विसकोसा, फिकुस रेसीमोसा, ग्लोरीओसा सुपेरबा, लुकस एस्पेरा, मोरिंडा सिट्रीफोलिया, औसिमम बेसिलिकुम, फीनिक्स डेक्टाइलिफेरा, फाइलेन्थस फ्रेटेर्नुस, स्केवीओला टकाडा, सीडा वेरोनिसिफोलिया, टक्का पीनेटिफिडा, थेसपिसिया पोपुल्नुस तथा टूर्निफोर्तिया*।

सन 1989 में जोसफ और मधुसूदन ने यहाँ के पर्णांगो (टेरिडोफाइट्स) की जातियों का भी वानस्पतिक अन्वेषण किया। सन 1995 में रॉव और एल्लिस ने कुल 238 वनस्पतियों का वर्णन किया, तथा 2011 में सुधाकर रेड्डी तथा पी. एस. रॉय ने यहाँ से 348 वनस्पतियों का उल्लेख किया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा हाल ही में किए गये समूह की वानस्पतिक विविधता के अध्ययन के आधार पर लगभग 400 से अधिक वनस्पतियाँ एकत्रित की गयी हैं, जिनका सम्पूर्ण विवरण तैयार किया जा रहा है।

यहाँ पर पाई जाने वाले सर्वाधिक कुलों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है –

एकबीजपत्री– अमारेलीडेसी, एरेसी, एरिकेसी, कोमेलाइनेसी, सिमोडोसीएसी, साइपरेसी, डायोस्कोरिएसी, लिलिऐसी, म्यूजेसी, पैन्डनेसी, पोएसी, टैक्सेसी ।

लक्षद्वीप की वानस्पतिक विविधता का संक्षिप्त विवरण

वर्ग	कुल	वंश	जातियाँ
द्विबीजपत्री	68	196	315
एकबीजपत्री	12	48	85
योग	80	245	400

द्विबीजपत्री– एकैन्थेसी, एजोएसी, अमारेन्थेसी, एनाकार्डिऐसी, एन्ड्रोपोगोनेसी, एनोनेसी, एपोसाइनेसी, एसलीपियाडेसी, एस्टरेसी, बालसैमिनेसी, बिक्सेसी, बाम्बाकेसी, बोराजिनेसी, ब्रेसीकेसी, सीसलपिनेसी, कैरिकेसी, कैरियोफिलेसी, कैजुराइनेसी, सीलैस्ट्रेसी, क्लीओनेसी, क्लूसिएसी, कॉम्ब्रीटेसी, कोन्वालवूलेसी, कैसुलेसी, कुकुरबिटेसी, इलियोकारपेसी, यूफोर्बिऐसी, फैबेसी, फिक्वायडी, फ्लैकोरटिऐसी, गुडिनिऐसी, हरनैनडिऐसी, लेमिऐसी, लौरेसी, लेसीथिनेसी, लाइथ्रेसी, मालवेसी, मिलिऐसी, माइमोजेसी, मोल्यूजिनेसी, मोरेसी, मोरींगसी, मिर्टेसी, निक्टाजिनेसी, ओलिऐसी, ओनाग्रेसी, पपावरेसी, पिडेलेसी, पाइपरेसी, प्लमबोजिनेसी, पॉलिगेलेसी, पॉलिगोनेसी, पोर्टुलाकेसी, पोटेमोजिटोनेसी, पूनिकेसी, रैहम्नेसी, राइजोफोरेसी, रूबिऐसी, रूटेसी, सेपौटेसी, सेपिन्डेसी, स्क्रोफुलेरिऐसी, सोलेनेसी, सुरियानेसी, टीलिऐसी, अर्टिकेसी, वेर्बीनेसी एवं वाईटेसी हैं।

इन कुलों की प्रतिनिधित्व प्रमुख शाक घासें, झाड़ी, आरोही/लतायें तथा वृक्ष निम्नवत हैं।

शाक – *एम्पेशियन्स बालसेमिना, कोलोकेशिया एसक्यूलेन्टा, एगेव वाइटियाई, सेसूवियम पोर्टूलाकेस्ट्रम, एलोए वेरा, एमेरेन्थस विरीडिस, सीलोसिया अर्जेन्टिया, एयर्वा लेनाटा, एकाइरेन्थस एस्परा* प्रभेद *पेराफाइरिस्टेकिया, एकाइरेन्थस बाइडेन्टेटा, डाइजीरिया म्यूरीकेटा, क्राइनम एसियेटिकम, पैनक्रेसियम जिलेनिका, कैथारेन्थस रोजियस, एकोरस कैलेमस, एलोकेसिया मैक्रोराइजा, एनाफेलम बेडोमी, एनाफेलम वाईटिआई, कोलोकेसिया एस्क्यूलेन्टा, पिस्टिया स्ट्रैटियाइटिस, एकैन्थोस्पर्मम हिस्पिडम, एजिरेटम कोनीज्वाइड़िस, एडिनोस्टेमा लेवीनिया, बाइडेन्स बाइटीनेटा, बाइडेन्स पाइलोसा, ब्लूमिया सिनुएटा, ब्लूमिया मेम्ब्रेनेसिया, ब्लूमिया एक्सीलेरिस, ब्लूमिया आब्लीकुआ, ब्लूमिया लेसीरा, एक्लिप्टा प्रोस्टेटा, क्रोटेलेरिया जन्सिया, क्रोटोलेरिया मेडिकाजीनिया, क्रोटोलेरिया पेलाइडा, क्रोटोलेरिया पेनीकुलेटा, क्रोटोलेरिया रेटूसा, क्रोटोलेरिया रेजिडा, क्रोटोलेरिया वेरीकोसा, क्रोटोलेरिया विल्डेनोवियाना, डेस्मोडियम गैन्जेटिकम, डेस्मोडियम ट्राइफ्लोरम, कारकोरस स्टोएन्स, कारकोरस कैप्सोलेरिस, कारकोरस ट्राइलोकुलेरिस, एलिफेन्टोपस स्क्रेबर, एमिलिया सोन्कीफोलिया, सूडोकोनाइजा विस्कोसा, लोनिया एकोलिस, लोनिया सार्मेन्टोसा, माइकेनिया माइक्रेन्था, स्पाइलेन्थस केलवा, सिनिड्रेला नोडिफ्लोरा, ट्राइडेक्स प्रोकम्बेन्स, सायन्थिलियम सिनेरियम, एकैलिफा लैन्स्योलेटा, एकैलिफा इंडीका, एकैलिफा मालाबारिका, क्लेवजाइलोन मरक्यूरियंलिस, यूफोर्बिया एटोटो, यूफोर्बिया आर्टीकुलेटा, यूफोर्बिया हाइनीयाना, यूफोर्बिया प्ल्यूलीफेरा, यूफोर्बिया हाइपरीसिफोलिया, यूफोर्बिया थाइमीफोलिया, यूफोर्बिया रोजिया, यूफोर्बिया टिरुकल्ली, यूफोर्बिया हिट्रोफिलम, पेडिलेन्थस टिथीमेलोयडिस, फिलैन्थस एमारस, फिलैन्थस फ्रेटर्नस, फिलैन्थस मेडरस्पटेन्सिस, फिलैन्थस रोटन्डीफोलियस, फिलैन्थस यूरीनेरिया, ट्रेजिया इनवैल्यूक्रेटा, मैनीहोट यूटिलीसिमा, नेप्टोनिया ओलिरेसिया, सेन्ना ऑक्सीडेन्टालिस, सेन्ना टोरा, एलिसीकार्पस मोनिलीफर, एलिसीकार्पस वेजीनेनिस* प्रभेद *नुमोलेरीफोलियस, एरैकिस हाइपोजिया, केजेनस केजान, टेफरोसिया क्यूमिला, टेफरोसिया परप्यूरिया, टेफरोसिया स्ट्राइगोसा, मोलिगो स्पर्गुला, स्कैविओला टकाडा, एक्रोसैफेलस हिस्पीडस, एनाइसोमेलेस इंडीका, हिप्टिस सोआविओलेन्स, ल्यूकस एस्पेरा, ओसिमम वेसीलेकम, ओसीमम ग्रेटीसिमम, ओसीमम टन्चीफोलियम, बोरहाविया डिफ्यूजा, बोरहाविया इरेक्टा, बोरहाविया रीपेन्स, बोरहाविया प्रोकम्बेन्स, बोगनवीलिया स्पेक्टाबिलिस, मिराबिलिस जलापा, पाइसोनिया ग्रेन्डिस, पाइसोनिया अम्बेलिफेरा, लुडवीजिया पेरीनिस, आर्जीमोन मेक्सिकाना, मार्टीनिया एनुआ, पेपरोमिया पेलुसिडा, पेपरोनिया टेट्राफिला, पोलीगेला इरियोप्टेरा, पॉलीगोनम सेरुलेटम, पोटूँलाका वोलिरेसिया, पोटूँलाका कोड्रीफिडा, हेडियोटिस प्यूबरोला, हेडियोटिस ब्रेवीकेलेक्स, हेडियोटिस वर्टीसिलेटा, डेन्टेला रिपेन्स, बैकोपा मोनिएरी, किक्सिया रैमोसिसिमा, स्ट्राइगा एसियेटिका, स्ट्राइगा ल्यूटिया, अमानिया बैसीफेरा, मोनिऐरा कोनिफोलिया, लिन्डनबर्जिया इंडीका, लिन्डर्निया क्रसटेसिया, दतूरा फास्टुवोसा, दतूरा मीटल, फाइसेलिस मिनिमा, फाइसेलिस एंग्युलेटा, फाइसेलिस पेरुवियाना, कैप्सिकम मिनिमम, कैप्सिकम फ्रूटीसेन्स, लाइकोपर्सिकम स्कूलेन्टम, सोलेनम वर्जिनेनम, सोलेनम टोर्वम, टक्का लीआन्टोपेटेलोयडिस, लैपोर्टिया इंटरेपटा, पूजोल्जिया जिलेनिका, पूजोल्जिया इंडीका, पूजोल्जिया इंडीका* प्रभेद *माइक्रोफिला, साइप्रस एरिनेरयस, साइप्रस कॉम्प्रेसस, साइप्रस कॉनग्लोमैरेटस* प्रभेद *पैकीराइजस, साइप्रस कॉनग्लोमैरेटस, साइप्रस न्यूटेन्स, साइप्रस पिनेटस, साइप्रस रोटन्डस, साइप्रस टयूबरोसस,*

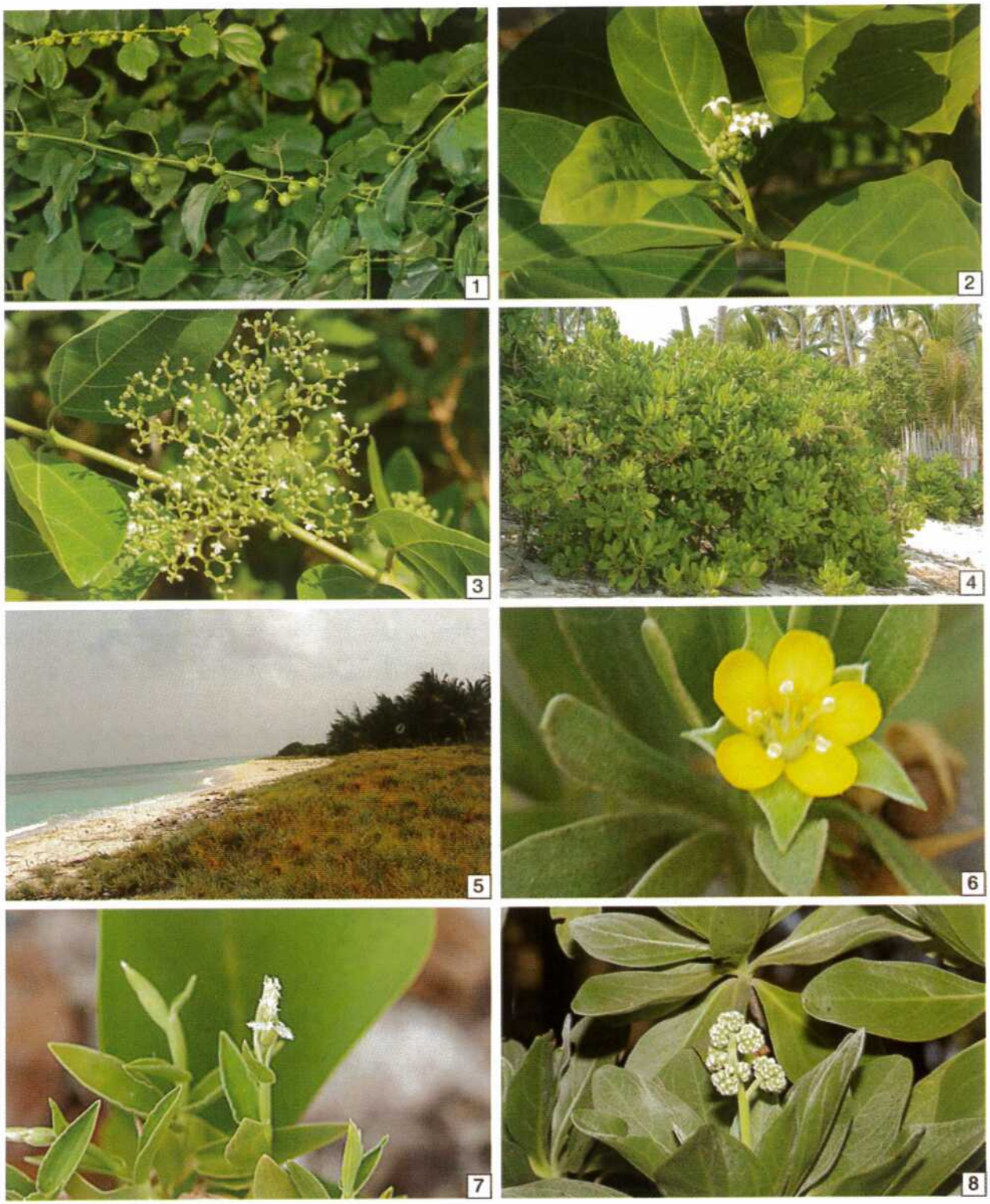

1. *कोलूबिना एशियाटिका* 2. *मोरिंडा सिट्रीफोलिया* 3. *प्रेम्ना कॉरिऐम्बोसा* 4. *स्केवोला सेरिसिया*
5. *स्पीनीफेक्स लिट्टोरियस* 6. *सूरियाना मैरिटिमा* 7. *थोरिया इन्वोल्यूटा* 8. *टोर्निफोर्टिया अर्जेंटिया*

फिम्ब्रीस्टाइलस साइमोसा, फिम्ब्रीस्टाइलस जंकीफॉरमिस, फिम्ब्रीस्टाइलस फैलकेटा, किलिंगा मेमोरैलिस, मारिसकस डूबिस, मारिसकस जावानिकस, मारिसकस सूमात्रेंसिस आदि हैं।

घासें – यहाँ पाये जाने वाली घासों में प्रमुखतः *एप्लूडा म्यूटिका, साइनोडोन डैक्टाइलोन, सिरटोकोकम ट्राइगोनम, डिजिटेरिया सीलिएटिस, डिजिटेरिया लन्जीफ्लोरा, डिजिटेरिया सैन्गुइनेलिस, डिजिटेरिया सेटिजेरा, इलियूसीन इजिप्टिका, इलियूसीन कोराकाना, इलियूसीन इंडीका, इरेग्रेस्टिस एमाबिलिस, इरेग्रेस्टिस टिनेला, इरेग्रेस्टिस टिनेला* प्रभेद *ब्रेवीकल्मिस, इरेग्रेस्टिस टिनेला* प्रभेद *प्लूमोसा, इरेग्रेस्टिस सिलियेरिस, इरेग्रेस्टिस कोआरक्टेटा, इरेग्रेस्टिस विस्कोसा, हीट्रोपोगोन कोन्टोरटस, इस्केमम इंडिकम, लेप्टूरस रिपेन्स, ओफिओरस एक्सोलटेटस, ओप्लिसमेनिअस बरमानी, ओप्लिसमेनिअस कम्पोसिटस, पेस्पेलम डिस्टिकम, सिटेरिया वर्टिसिलेटा, साइलेन्टवेलिया नाइराई, स्पिनिफेक्स लिटटोरस, स्पोरोबोलस टेन्विसियस, स्पोरोबोलस वरजीनिअस, थौरिया इन्वोल्यूटा, यूरोब्लोआ डाइस्टेकिया, ब्रैकियेरिया मिलीफोर्मिस, विटिवेरिया जिजैनिओइडिस, जिआ मेज* आदि हैं।

झाड़ियाँ –*नीरियम ओलियेन्डर, बिक्सा ओरिलाना, रिसिनस कम्यूनिस, माइमोसा प्यूडिका, कोल्यूब्राइना एसियेटिका, ग्लाइरीसीडिया सेपियम, इंडिगोफेरा कोर्डिफोलिया, इंडिगोफेरा टिंक्टोरिया, लबलब परप्यूरियस, सेन्ना सोफेरा, सेस्बेनिया बाइसपाइमोसा, सेस्बेनिया एक्यूलियेटा, सोफोरा टोमेन्टोसा, लिआ इंडीका, लिआ सैम्बूसिना, अमानिया बेसिफेरा, लौसोनिया इनरमिस, पेम्फिस एसिडुला, पैन्डेनस टिंक्टोरियस, ट्राइफेसिया ओरेन्टीओला, डोडोनिया विसकोसा, सूर्याना मेरीटाइम, मुन्टीजिया कैलुब्रा, क्लीरोडेन्ड्रॉन इनरमी, लेन्टाना केमारा, लेन्टाना कमारा* प्रभेद *एक्यूलियेटा, फाइला नोडीफ्लोरा, स्टैकीटारफेटा इंडीका, ब्रिटिस कोआड्रैन्गुलेरिस, विटिस ब्रैक्टयूलेटा* प्रभेद *ऑक्सीफेला, अमानिया बेसीफेरा, लौसोनिया इनरमिस, पेमफिस एसिडुला* ।

आरोही/लतायें –*एब्रस प्रिकेटोरियस, ऐलामेन्डा केथार्टिका, एरिस्टोलौकिया इंडीका, एसपेरेगस रेसीमोसा, कैलामस रोतांग, कैनावेलिया केथार्टिका, क्लाईटोरिया टर्नेटिया, सिसस क्वाड्रैन्गूलेरिस, कोल्यूब्राइना एसियेटिका, डायोस्कोरिया बल्बीफेरा, मुकुना कैपिटेटा, डोलिकोस लाबलाब, लाबलाब परप्यूरियस, ग्लोरियोसा सुपरबा, पाइपर बीटेल, पाइपर नाइग्रम, कार्डियोस्पमर्म हैलिकाकेबम, केरेटिया ट्राइफोलिया, सीसेलपीनिया बोन्डक, सीसेलपीनिया क्रिस्टेटा, सीसेलपीनिया पल्चेरिमा, टीनोस्पोरा कोर्डिफोलिया, कॉक्सीनिया ग्रैन्डिस, कुकुमिस प्रोफिटेरम, ट्राइकोसेन्थस कुकुमेराइना, ट्राइकोसेन्थस एन्गुइना, मोमॉरडिका कैरेन्टिया, लुफा एक्यूटेन्गुला, कुकुरबिटा मोस्केटम, कैसिथा फिलीफॉर्मिस, एन्टाडा स्कैन्डेन्स, आइपोमिया लॉगीफ्लोरा, आइपोमिया बटाटस, मेरेमिया डिसेक्टा, जैक्वीमोन्टिया पैनिकुलेटा, पाइपर बीटेल, पाइपर नाइग्रम।*

वृक्ष – लक्षद्वीप की वनस्पतियों में वृक्ष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिनमें *थेपेसिया पॉपलनिया, टर्नेफोर्टिया अर्जेन्टिया, टर्मिनेलिया कैटेपा, कॉकस न्यूसीफेरा, एरीका कटेचू, फ्लैकोसिया इंडीका, हरनेन्डिया निम्फीफोलिया, बारिंगटोनिया रेसीमोसा, आर्टोकॉरपस एल्टिलिस, आर्टोकॉरपस हिटरोफिलस, फाइकस बेंगालेन्सिस, फाइकस माइक्रोकरपा, फाइकस रिलीजिओसा, फाइकस रेसीमोसा, फाइकस ग्लोमरेटा, मोरस एल्बा, मोरिंगा ओलिफेरा, मोरिंगा कैरिगोस्पर्मा, सीडियम गुआजावा, सिजाईजियम क्यूमिनी, सिजाईजियम जम्बोस, लिगस्ट्रम पैरोटेटी, जिजीफस जुजूबा, जिजीफस मोरिसियाना, ब्रूजियेरा सिलिन्ड्रिका, सिरिओप्स कैन्डोलियाना, सिरिओप्स टगाल, सिट्रस ओरेन्टीफोलिया, मराया कोइनीगाई, मेन्जीफेरा इंडीका, एगल मारमेलोस, काइसोफिलम काइनीटू, मनिलकारा बाहामेन्सिस, एलोफिलस कॉबी, मन्टिजिया केलाब्रेरा, टमेरिन्डस इंडीका, पिथेसेलोबियम डल्सी, इरीथ्रिना स्ट्रिक्टा,इरीथ्रिना वेराइगेटा, एजाडिरेक्टा इंडीका, एल्सटोनिया स्कोलेरिस, कैलोफिलम आइनोफिलम, केजूराइना इक्वीसिटीफोलिया, अक्रोसिया आपोजिटीफोलिया, प्लूमेरिया रुब्रा, प्लूमेरिया अल्बा, प्यूनिका ग्रेनेटम, प्रेम्ना इन्टिग्रीफोलिया, सेसबेनिया ग्रेन्डीफोलिया, एनोना स्क्वेमोसा, कैसिया फिस्टुला, कैसिया सोफोरा, कैमीक्रिस्टा एबसस, कैमीक्रिस्टा प्यूमिला, डेलोनिक्स रीजिया, ग्यूटार्डा स्पीसिओसा, मन्टिजिया कैलाबुरा, कैरिका पपाया* आदि वृक्ष जातियाँ प्रमुख हैं ।

उत्तराखण्ड हिमालय का प्रसिद्ध दयारा बुग्याल : संरक्षण और संवर्धन

संजय कुमार एवं एस. एस. दाश
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारत के 27वें राज्य के रूप में 9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड राज्य अस्तित्व में आया, देवभूमि के नाम से प्रसिद्ध उत्तराखण्ड अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति और इतिहास के लिये ही नहीं वरन् अपनी अतुल्य जैव विविधता के लिये विश्वभर में प्रसिद्ध है। उत्तराखंड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में वृक्ष रेखा (ट्री लाइन) और हिम रेखा (स्नो लाइन) के मध्य अनेक उच्च हिमालयी घास के मैदान विस्तृत रूप से फैले हुये हैं, इन्हें स्थानीय भाषा में बुग्याल एवं आंग्ल भाषा में एल्पाइन मिडोज् कहा जाता है। शाब्दिक रूप से बुग्याल का अर्थ 'बुग्गी' नामक घास के क्षेत्र से है, जो हिमालयी क्षेत्रों में वृक्ष रेखा लगभग 3200 मी. की ऊंचाई से लेकर हिम रेखा 5000 मी. की ऊंचाई तक फैले हैं। ग्रीष्म काल के प्रारम्भ में (मार्च में बर्फ पिघलने के बाद) इन मखमली घास के मैदान में उगने वाली पौष्टिक घास एवं छोटे–छोटे पौधों को पशुओं और भेड़ बकरियों के लिये विशेष पौष्टिक चारा माना जाता है, इसलिये उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्रों के पशुचारक / मेषपालक 3–6 महीनों के लिये अपने पशुओं को इन बुग्यालों में ले जाते हैं। उत्तराखंड में बुग्याल मुख्यतः उत्तरकाशी, चमोली, रूद्रप्रयाग, बागेश्वर एवं पिथौरागढ़ जनपदों के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में पड़ने वाले कुछ उल्लेखनीय बुग्यालों में चमोली जनपद स्थित औली बुग्याल, जोशीमठ से 14 किलोमीटर की दूरी पर 2600 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है, औली बुग्याल साहसिक खेल स्कीइंग का एक बड़ा केन्द्र है। सर्दियों में यहाँ के ढ़लानों पर स्कीइंग होती हैं और गर्मियों में यहाँ खिले विभिन्न प्रकार के फूल पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र होते हैं। कई वर्षों से औली शीतकालीन खेलों का भी प्रतिनिधित्व कर रहा है। प्रसिद्ध बेदनी बुग्याल रुपकुण्ड जाने के रास्ते में है जो 3500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है, इसके मध्य में स्थित वैतरणी झील यहाँ के सौंदर्य में चार चांद लगी देती है। गढ़वाल का स्विट्जरलैंड कहा जाने वाला चोपता बुग्याल 2900 मीटर की ऊंचाई पर गोपेश्वर–ऊखीमठ–केदारनाथ मार्ग पर स्थित है। चोपता से हिमालय की चोटियों के समीपता से दर्शन किए जा सकते हैं। यह एकमात्र बुग्याल है जहाँ सड़क मार्ग द्वारा पहुंचा जा सकता है। चोपता से आठ किलोमीटर की दूरी पर दुगलबिठ्ठा नामक बुग्याल है। टिहरी जिले में स्थित पवाली–कांठा बुग्याल भी ट्रेकिंग के शौकीनों के बीच जाना जाता है। टिहरी से घनसाली और घुत्तू होते इस बुग्याल तक पहुँचा जा सकता है। 11500 फीट की ऊंचाई पर स्थित यह बुग्याल संभवतयः गढ़वाल का सबसे बड़ा बुग्याल है। यहाँ से केदारनाथ के लिए भी एक मार्ग जाता है। उत्तरकाशी जनपद में गंगोत्री मार्ग पर भटवाडी तहसील से रैथल अथवा बारसू गाँव से 8 कि.मी. की की पैदल दूरी पर 30°51'37" उत्तर एवं 78°35'02" पूर्वी अक्षांश पर दयारा बुग्याल लगभग 3062 मी. की ऊंचाई पर स्थित है । यह बुग्याल धरती पर स्वर्ग की सैर करने जैसा ही है।

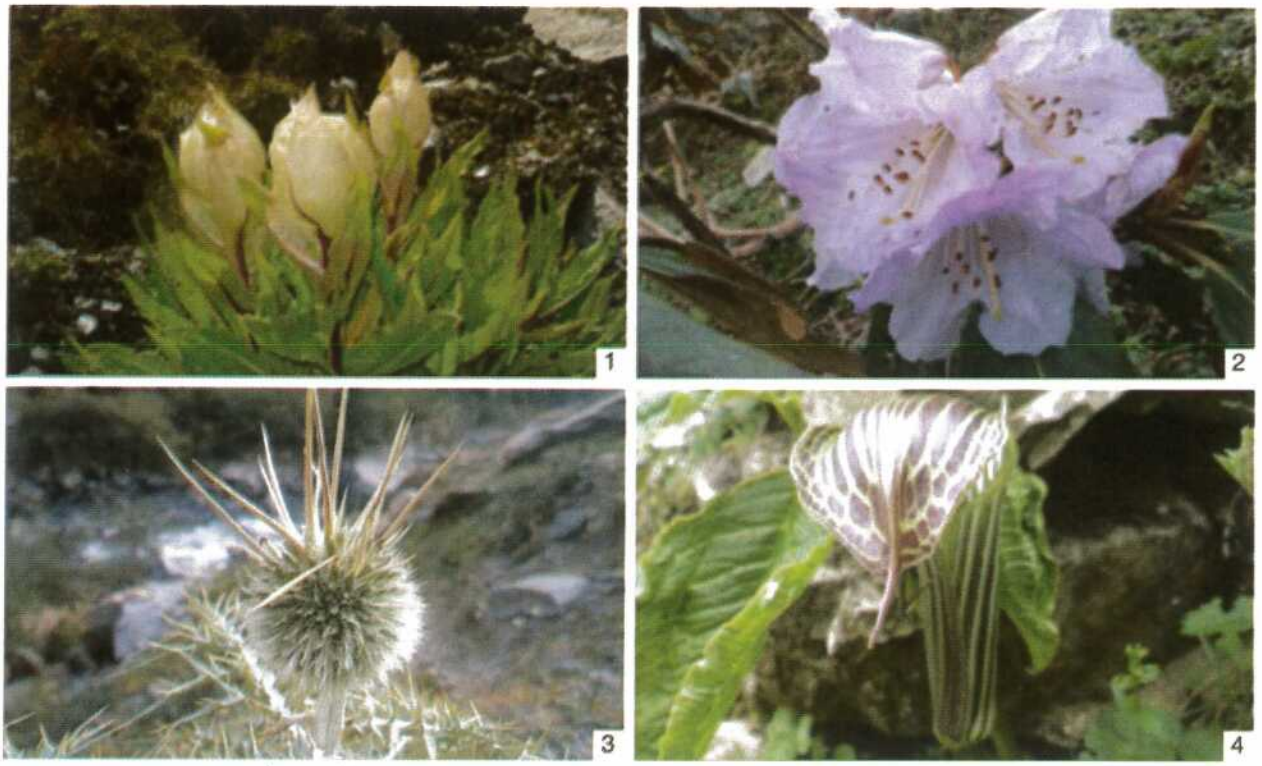

1. ब्रहम कमल (*सौसूरिया ओवेलाटा*), 2. सेमरू (*रोडोडेन्ड्रॉन* जाति), 3. कंटीला (*एकिनोप्स कार्निगेरस*), 4. नागफण (*ऐरेसियेमा प्रोपींकूम*)

उक्त लेख में दयारा बुग्याल की वनस्पति विविधता, स्थानीय संस्कृति में इसकी भूमिका के साथ–साथ दयारा के संरक्षण एवं संवर्धन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मुख्य रूप से इस बुग्याल की वनस्पति को दो भागों निम्न ऊंचाई वाले वन क्षेत्र एवं हिमाद्री वनस्पति (बुग्याल) क्षेत्र में बांटा जा सकता है।

1. निम्न ऊंचाई वाला वन क्षेत्र – इन वनों का विस्तार राज्य में 1400–3000 मी० की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मिलता है। यह वन क्षेत्र पर्यावरण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। हिमालय के इस क्षेत्र को मौसम परिवर्तन, अतिवृष्टि एवं ग्लोबल वार्मिंग के खतरे से भी जूझना पड़ रहा है। वृक्ष किसी भी पारितंत्र में वर्षा के अभिन्न अंग होते हैं। इस क्षेत्र में पाये जाने वाली वृक्ष जातियों में बाँज *(क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोलिया)*, बुराँश *(रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम)*, काफल *(मिरिया एस्कुलेंटा)*, मालू *(बाउहिनिया वाहेली)*, ग्वेरालू *(बाउहिनिया बेरिगेटा)*, अंयार *(लियोनिया ओवालिफ्लोरा)*, खर्सू ओक *(क्वेरकस सेमिकार्पीफोलिया)*, मोरू ओक *(क्वेरकस डिलाटाटा)*, बेडू *(फाइकस पालमेटा)*, रयांज *(क्वेरकस लेनुजिनोस)*, फणियाट *(क्वेरकस ग्लांका)*, पोपलर *(पोपूलस सिलियेटा)* मिलते हैं। थोड़ी ऊंचाई वाले स्थानों पर अखरोट *(जूग्लंस रिजिया)*, चिलगोजा *(फाइकस जिरारडियाना)*, देवदारू *(सिड्रस देवदारा)*, मोरिन्डा *(एबिज पिन्ड्रोव)*, कैल *(पाइनस वालिचाइना)*, दालिचिनी *(सिन्नामोमम तमाला)*, अमेस *(हिप्पोफी सेल्सिफोलिया)* एवं थुनेर *(टैक्सस बक्काटा)* आदि मिलते हैं। औषधीय पौधों के लिये यह क्षेत्र स्वर्ग कहा जाता है, यहाँ कंडाली *(अर्टिका इंडिका)*, वन धनिया *(कैरूम कार्वी)*, सौंफ *(फोइंकुलम वुल्गेर)*, खापरा *(एरिसाइया जैक्वीमोन्टाई)*, मारवा *(आर्टिमिशिया कैप्पीलैरिस)*, कंडाला *(इकिनोप्स कोरनिग्रेस)*, कनफुलिया *(तैराक्सम ऑफिसिनेल)*, कुरी *(सायनोग्लोसम ग्लाचिडियम)*, सकिना *(इंडिगोफेरा हेटरोन्था)*, नीलकंठी *(एजूगा ब्रैक्टिओसा)*, खट्टी बूटी *(ऑक्जेलिस कार्निकुलाटा)*, कंदमूल *(लिलियम पॉलिफाइलम)*, किगोंड़ *(बरबेरिस एरिस्टाटा)*, सतावरी *(एस्परैगस रेसिमोसस)*, ब्राह्मी *(सेन्टेला एशियाटिका)*, टिमूर *(जैन्थोजाइलम अर्मेटम)*, पाषाण भेद *(बर्जिनिया स्ट्रायची)*, चौरू*(एन्जिलिका ग्लूका)*, बसिंगा *(यूपेटोरियम एडिनोफोरम)* आदि प्रमुख रूप से मिलते हैं। वर्तमान में इस क्षेत्र में वनों की संख्या में कमी आने से सम्पूर्ण पारितंत्र की साम्यावस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

2. शीत कटिबंधीय हिमाद्रीय वनस्पति एवं बुग्याल वनस्पति – इन वनस्पतियों का वितरण समुद्रतल से 3000 मी० की ऊंचाई से लेकर हिम रेखा (स्नो लाईन) तक है। ये विशेष प्रकार की वनस्पतियाँ कठिन पारिस्थितिकीय तंत्र में सफलतापूर्वक उगने की खूबी को अंगीकार कर चुकी हैं। इन वनस्पतियों की ऊंचाई बेहद कम तथा जीवन चक्र छोटा होता है, इनमें ग्रीष्मकाल में पुष्पन होता है तथा शीत में जब तापमान शून्य से काफी

नीचे कभी कभी –15° तक चला जाता है, तो इनके बीज सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं और अनुकूल मौसम में पुनः अंकुरित होने की क्षमता धारण किये हुये होते हैं। दयारा क्षेत्र में पाये जाने वाली प्रमुख वनस्पतियों में पुष्पीय एवं औषधीय पौधों की कई जातियाँ पाई जाती हैं। जिनमें मीठा जहर *(एकोनिटम हेटरोफिल्लम, एकोनिटम बलफोराई)*, कड़वी *(एकोनिटम वियोलेसियम)*, निरविशी *(डेलफिनियम वेस्टीटम)*, पंगलाजड़ी *(थालिक्ट्रम फोलियोलोसम)*, वन–ककड़ी *(सिनोपोडोफाइलम हैक्जैन्ड्रम)*, ब्रह्मकमल *(सासुरिया ओबेलेटा)*, फेन कमल *(सासुरिया गोस्सिपिफोरा)*, लाल–जड़ी *(अरनिबिया युक्रोमा)*, गंगा तुलसी *(आर्टिमिशिया गैमेल्नाई)*, सालम मिश्री *(सातरियम नेपालेन्सिस)*, फरण *(एलियम स्ट्राइची)* आदि प्रमुख हैं।

निचले क्षेत्रों में कैल (*पाइनस वालिचाइना*), नैरपाती (*स्कीमीया एंक्वीटिलिया*), मोरिन्डा (*एबिज पिन्ड्रोव*), *प्रूनस कारनूटा*, भोजपत्र (*बिटूला यूटेलिस*) एवं *सैलिक्स* जैसी जातियों के वृक्ष पाये जाते हैं। छोटे कम ऊंचाई वाले वृक्षों में थेलू *(जूनिपेरस कोम्यूनिस)*, धूप (*जूनिपेरस* जाति) *एवं* रागा *(पिसिया स्मिथिया)*, एवं *रोडोडेन्ड्रॉन* वंश के वृक्ष पाये जाते हैं।

दयारा बुग्याल का स्थानीय संस्कृति से जुड़ाव – दयारा बुग्याल मात्र हिमालयी चारागाह ही नहीं वरन् यहाँ की लोक– संस्कृति में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। उत्तरकाशी जनपद की टकनौर पट्टी के सुक्की, झाला, बगोरी, जसपुर, हर्षिल, जसपुर, धराली, मुखवा, नेलंग तथा जादुंग एवं रैथल, बार्सू, ग्राम के स्थानीयों के द्वारा भाद्रपद मास के 20 गते से 30 गते तक *शेलकू पर्व* मनाया जाता है। शेलकू अर्थात् न सोने का पर्व, उत्सव मनाने का पर्व अपने स्थानीय आराध्य देवता से मनौतियाँ मांगने का पर्व ! इस उत्सव का प्रारम्भ टकनौर के स्थानीय देवता सोमेश्वर की देवडोली के द्वारा किया जाता है, प्रकाशोत्सव के भांति ग्रामीण युवक बुग्याल एवं उच्च हिमालयी क्षेत्रों से लाये गये ब्रह्मकमल, फेनकमल, लेसर, फ्योंली आदि के फूलों से पूरे गॉव को और अपने घर–द्वार को सजाते हैं तथा देव डोली के ग्राम में आने की प्रतिक्षा करते हैं। फूल मालाओं, शाल–दुशालों से सुसज्जित देव डोली के साथ रासौं नृत्य किया जाता है और मनौतियाँ मांगी जाती हैं। इस उत्सव के विषय में जानकारों का कहना है कि इस उत्सव का सम्बंध भागीरथी घाटी के व्यापारियों के तिब्बत से जुड़े व्यापार से है। विगत काल में जब स्थानीय व्यापारी नमक, ऊन, सेब, आदि की आपूर्ति के लिये शीतकाल से पूर्व ही यहाँ के दर्रों को पार कर तिब्बत जाते थे, तो इन व्यापारियों की सकुशल वापसी के लिये यह उत्सव मनाया जाता था, जो आज भी मनाया जाता है।

1. दयारा बुग्याल में अंदूड़ी उत्सव के दौरान लोक नृत्य करते स्थानीय लोग 2. अंदूड़ी उत्सव के दौरान दही मक्खन की होली खेलते ग्रामीण

अंदूड़ी उत्सव – अंदूड़ी उत्सव भी दयारा बुग्याल में स्थानीय निवासियों के द्वारा मनाये जाने वाला पर्व है। यह पर्व प्रत्येक वर्ष श्रावण मास में मनाया जाता है, जिसमें श्री कृष्ण एवं राधा जी की पूजा की जाती है और कामना की जाती है कि बुग्याल में ऐसे ही वनस्पतियाँ फले–फूलें जिससे स्थानीय ग्रामीणों के पशुओं को ग्रीष्मकाल में चारे की समस्या न हो । श्री कृष्ण को भोग के रूप में दूध मक्खन चढ़ाया जाता है तथा प्रसाद स्वरूप बांटा जाता है । स्थानीय इस पर्व के दौरान बुग्याल के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति अपनी कर्तज्ञता व्यक्त करते हैं, वर्तमान में इसे ही बटर फेस्टिवल का नाम दे दिया गया है।

वन-गुर्जर और दयारा बुग्याल– घुमंतु और बेहद कठिन जीवन जीने वाली वन गुर्जर जनजाति मुख्यतः मुस्लिम धर्म को मानने वाले लोग हैं, जिनकी आबादी शिवालिक हिमालय और तराई के जिलों में निवास करती है, इनके दो प्रमुख समुदाय है बकरवाल (भेड़ बकरी पालक) और दोधी गुर्जर (गाय, भैंस पालक) हैं। ये जनजाति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हिमालय और यहाँ के पर्यावरण से जुड़ी हुई है, ग्रीष्म काल के दौरान जब तराई क्षेत्र में गर्मी से चारे की कमी हो जाती है तो ये अपने पशुओं को हिमालय के बुग्यालों की ओर ले जाते हैं क्योंकि इस समय बुग्याल बर्फ पिघलने के साथ ही पौष्टिक चारे से भर जाते हैं। इनके पशुओं के अवशिष्ट (गोबर, मल मूत्र) आदि से बुग्यालों के औषधीय पौधों को जैविक खाद प्राप्त होता

है और बदले में पशुओं को पौष्टिक चारा। सदियों से वन गुर्जर हिमालय के इन बुग्यालों में घुमंतुओं की भांति 3 से 4 माह के लिये निवास करते आये हैं और यहाँ के बुग्यालों और इनके मध्य एक विनिमय का सीधा और सौहार्दपूर्ण रिश्ता है। पशुपालन और दूध व्यापार गुर्जर जनजाति की मुख्य आय एवं भरण–पोषण का मुख्य स्रोत है। दराया बुग्याल में भी स्थानीय ग्रामीणों के साथ मात्र 3–6 माह बुग्याल में रहने वाले ये गुर्जर पर्वतीय क्षेत्र का अभिन्न अंग बन चुके हैं।

दयारा पर संकट एवं समाधान के उपाय – हिमालय पर बढ़ते प्रदूषण, मानवीय अतिक्रमण, अनियंत्रित पर्यटन, विदोहन एवं ग्लोबल वार्मिंग का असर यहाँ के बुग्यालों पर भी पड़ा है और दयारा का रमणीय बुग्याल भी इससे अछूता नहीं है। वर्तमान में इस बुग्याल पर विकास का भारी दबाब बन रहा है जो अब तक लगभग अछूती रही यहाँ कि पादप जैव विविधता के लिये एक संकट बनकर उभरा है, जिनमें मुख्य कारक एवं उनके समाधान को वर्णित किया गया है।

1. अत्यधिक पशु चारण – दयारा एवं उत्तराखंड के अधिकतर बुग्यालों में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त गुर्जर जनजाति के लोगों के द्वारा अधिक संख्या में पालतू पशुओं को लाने से दयारा बुग्याल की पारिस्थितिकी, वनस्पति सम्पदा पर विपरित प्रभाव पड़ने लगा है। ये जनजाति चारे, लकड़ी, अस्थाई हट, जलाऊ लकड़ी के लिये बुग्याल एवं इसके निकटवर्ती क्षेत्र पर ही निर्भर रहती है, इनकी संख्या में बढोत्तरी से पारितंत्र पर दबाब स्वाभाविक है । 10 वर्षों में देखा गया है कि जो क्षेत्र पहले हरी भरी घासों से ढका रहता था वो आज मृदा अपरदन से ग्रसित है और वनस्पतियों पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है ।

इसकी रोकथाम के लिये आवश्यक है कि गुर्जरों को बुग्याल के संरक्षण के प्रति जागरूक किया जाये और पशुचारणता (पस्तोरेलिज्म) की वैज्ञानिक विधियों से उन्हें अवगत करवाया जाये, दयारा के अधिक दोहन वाले हिस्से (बरनाला, बकराटोप, गिडारा, देवताल) आदि को चिन्हित कर, गुर्जरों को वहाँ से दूसरे स्थानों में चारागाह तलाशने एवं अस्थाई रूप से निवास करने में सहायता दी जानी चाहिये।

2. पर्यटन – दयारा के साथ साथ उत्तराखंड के अन्य बुग्यालों में भी पर्यटन की असीम संभावनायें हैं, ये स्कींग, कैंपिंग, ट्रैकिंग के लिये उत्तम सिद्ध हुये हैं, फलस्वरूप प्रकृति की इस अनुपम धरोहर से सभी लाभ कमाना चाहते हैं। हाल ही में दयारा को '*उत्तराखण्ड राज्य का ट्रैक ऑफ द ईयर–2015*' भी चुना गया है, जो इसके लोकप्रियकरण में सहायता करेगा। किन्तु यहाँ पर किये गये किसी भी विनिर्माण कार्य से कालान्तर में यहाँ की वनस्पति सम्पदा और पारिस्थितिकी पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा, एतएव किसी भी योजना को क्रियान्वियत करने से पूर्व पर्यावरण को होने वाले लाभ और हानि का आंकलन किया जाना अपेक्षित है।

बुग्याल हिमालय की प्राकृतिक धरोहर एवं प्रकृति का अनुपम उपहार हैं, जो औषधीय पौधों, पुष्पों के साथ साथ उत्तम प्रकार का चारा प्रदान करने का कार्य करते हैं। इनका सही प्रकार से दोहन करने एवं साल दर साल बुग्याल में प्रवेश करने वाले स्थानीय लोगों एवं गुर्जरों जनजाति को इसके रख रखाव की जिम्मेदारी भी देनी चाहिये अन्यथा इस सुंदर बुग्याल का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा । ------

1

2

3

4

1. दयारा के बुग्याल में चरतीं भेड़ों का झुंड 2. दूध निकालता गुर्जर समुदाय का व्यक्ति 3. दयारा के बकराटोप क्षेत्र में होता भूमि अपरदन 4. पशु चराई का एक दृश्य

गोविंद पशु विहार वन्यजीव अभयारण्य, पश्चिमी हिमालय के संकटग्रस्त औषधीय पौधे

आर. मणिकंदन, एस. के. श्रीवास्तव एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

गोविंद पशु विहार वन्यजीव अभयारण्य पश्चिमी हिमालय में उत्तराखंड राज्य के उत्तरकाशी जिले की पुरोला तहसील में 31°17'से 35°55' उत्तरी अक्षांश और 77°47' से 78°37' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। यह विश्व में पाये जाने वाले 34 जैव विविधता तप्त स्थलों में से एक भारत के पश्चिमी हिमालय तप्त स्थल जहाँ स्थानिक प्रजातियों का प्रचुर भण्डार है में, अवस्थित है। इन क्षेत्रों को जैव विविधता के आकर्षण केन्द्र के अतिरिक्त स्थानिक जातियों की असाधारण एकाग्रता वाले क्षेत्रों के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।

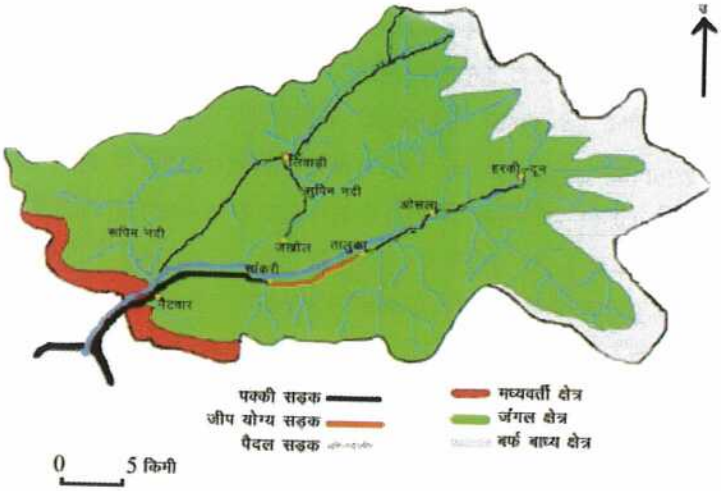

गढ़वाल हिमालय के ऊंचाई वाली पर्वत चोटियों की एक श्रृंखला में स्थित गोविंद पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव अभयारण्य, हिमाचल प्रदेश के उत्तर में और टोंस यमुना वाटरशेड के दक्षिण में है। यह 957.96 वर्ग किमी के क्षेत्रफल में विस्तारित है तथा यहाँ की ऊंचाई 1300 मी. से 6323 मी. तक है, जो टोंस वन प्रभाग के रूपीन और सुपीन की क्षेत्रीय सीमाओं से लगा हुआ है। गोविंद पशु विहार की स्थापना वर्ष 1955 में वन्यजीव अभयारण्य के रूप में हुई थी, जो ऊपरी टोंस घाटी का एक हिस्सा है। अभयारण्य का कोर जोन वर्ष 1991 में राष्ट्रीय उद्यान के रूप में घोषित किया गया था, जिसका क्षेत्रफल लगभग 472.08 वर्ग कि.मी. है। अभयारण्य का नाम भारत रत्न गोविंद वल्लभ पंत के नाम पर रखा गया है।

अभयारण्य तीन वन रेंज में बँटा हुआ है रूपीन, सुपीन तथा सांकरी। प्रत्येक रेंज को दो वर्गों मे विभाजित किया गया जो क्रमशः हिमरी–पर्वत/सत्ता, नैटवाड़–जखोल, सांकरी–तालुका है, प्रत्येक वर्ग को पुनः पांच अनुभागों में बांटा गया है, जिसका उद्देश्य अनियंत्रित कटाई सहित अवैध गतिविधियों पर रोक, अवैध शिकार को नियंत्रित करने और विकास के लक्ष्य को पूरा करना है। इस अभयारण्य में निवास करने वाली जनजातियों में रवांल्टा, जौनसारी और गुर्जर मुख्य हैं। वर्तमान सर्वेक्षण के आधार पर यहाँ की वनस्पति विविधता को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है 1. उप उष्णकटिबंधीय चीड़वन, 2. हिमालय नम शीतोष्ण वन, 3. हिमालय शुष्क–शीतोष्ण वन, 4. उप अल्पाइन वन, 5. नम अल्पाइन स्क्रब वन।

संकटग्रस्त औषधीय पादप – विश्व स्तर पर लगभग 30,000 पौधों का औषधियों के रूप में विभिन्न पारंपरिक पद्धतियों में प्रयोग किया जाता है, जिसमें भारत में लगभग 8000 पौधों का चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों में प्रयोगकर अनेक रोगों का निदान किया जाता है। औषधीय पौधों को आम तौर पर उनके उपचार के मूल्य एवं उपयोग के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। भारत में औषधीय पौधे मुख्य रूप से आयुर्वेद, सिद्धा और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में प्रयोग किए जाते रहे हैं। पौधों के द्रव्य का होम्योपैथी में प्रयोग किया जाता है, जबकि एलोपैथी पद्धति में विशुद्ध रूप से रसायनों का प्रयोग होता है, जो होम्योपैथी की तुलना में अग्रणी तकनीकी पर आधारित हैं। हिमालयी क्षेत्र विशेष रूप से पश्चिमी हिमालय में औषधीय पौधों का प्रचुर भण्डार हैं। वर्तमान अध्ययन के अनुसार यह क्षेत्र औषधीय पौधों की दृष्टि से समृद्ध होने के साथ–साथ उनके अस्तित्व के लिये भी संकटग्रस्त बना हुआ है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पायी जाने वाली लगभग 60,000 जातियों में से लगभग 34,000 जातियां संकटग्रस्त हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित रेड डाटा पुस्तक के अनुसार 622 पौधे संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। हाल ही में 19 फरवरी 2000 में, आईयूसीएन परिषद आयोग की 51वीं बैठक (एसएससी) जो ग्लैंड, स्विट्जरलैंड, में आयोजित की गयी थी, में प्रजातियों के अस्तित्व को लेकर लाल सूची श्रेणियों पर एक उन्नत संस्करण का भी प्रकाशन हुआ।

उत्तराखण्ड राज्य से वर्तमान में आवृत्तबीजी वनस्पतियों की 55 जातियां आंकी गयी हैं जो 44 वर्ग, 20 कुलों के तहत विद्यमान हैं। वर्तमान अध्ययन के अनुसार 35 संकटग्रस्त औषधीय पौधों की प्रजातियों में से 10 प्रजातियां गंभीर रूप से संकटग्रस्त एवं 12 संकटग्रस्त श्रेणी में है।

जैव विविधता के नुकसान के कारण – अभयारण्य को सबसे अधिक नुकसान मानवजनित है जैसे वनों की कटाई, पशु चराई, लकड़ी और ईंधन की अनियमित कटाई, मिट्टी का कटाव, विनिर्माण योजनाओं, औषधीय पौधों का अंधाधुंध दोहन, वनाग्नि, पर्यटकों के दबाव और आक्रामक वनस्पति जातियों के स्वदेशी वनस्पतियों के लिए खतरा है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदा, बाढ़, भूस्खलन जिसके चलते मृदा की ऊपरी सतह का बह जाना आदि कारकों से वनस्पतियों के अस्तित्व को निरन्तर खतरा बना रहता है। वर्तमान अध्ययन क्षेत्र की ऐसी बेजोड़ प्राकृतिक सुंदरता के भावी संरक्षण के साथ ही वानस्पतिक सम्पदा का संरक्षण आवश्यक है तथा साथ ही यह आनुवांशिक विविधता को बनाए रखने में सहायक है, जो स्थानिक पौधों और लुप्तप्राय जीव–जन्तुओं का प्राकृतवास है।

संरक्षण के उपाय– इन संकटग्रस्त प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाने के लिये कई उपाय किये जाने आवश्यक हैं, इन उपायों में वन सम्बन्धी योजनाओं की निरन्तर निगरानी के साथ–साथ उनके संरक्षण हेतु पादप सर्वेक्षण और संयंत्र संसाधनों के डाटाबेस बनाने पर अधिक जोर दिया जाना आवश्यक है, तभी संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क भी (पैन) उन्मुख जातियों के निवास और पारिस्थितिकी प्रणालियों के रूप में नामित किया जा सकेगा, जिसके द्वारा प्रजातियों का उनके प्राकश्तवास में संरक्षण किया जा सकेगा। दुर्लभ लुप्तप्राय, संकटग्रस्त स्थानिक प्रजातियों के संरक्षण हेतु वनस्पति उद्यान, चिड़ियाघर, जीन बैंकों के माध्यम से बाह्य संरक्षण कर बचाया जा सकता है। पौधों की जातियों की राज्यवार सूची के अनुसार कार्य शुरू कर दिया गया है तथा उनके संग्रह को विनियमित करने, पुनर्वास और संरक्षित करने के लिए दिशा निर्देशों को प्रस्तावित किया गया है।

गोविंद पशु विहार वन्यजीव अभयारण्य, पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाले के संकटग्रस्त औषधीय पौधों की सूची

नाम	वंश	स्थानीय नाम	जात	उपयोगी भाग	उपयोग
ऐसर साइसियम	ऐसीरेसी	कैंजल, मारिक	पेड़	पूरा पौधा	परंम्परागत चिकित्सा पद्धति में उपयोग आमवाती विरोधी, रेचक, उल्टी आदि में
ऐकोनिटम फाल्कोनरॉई	रेननकुलेसी	मीठा विष, तैलिया	झाड़ी	जड़	वातहर शामक, जड़ का पाउडर दूध के साथ मिलाकर हृदय रोग में उपयोगी
ऐकोनिटम हेटरोफिल्लम	रेननकुलेसी	हाथिस	झाड़ी	जड़	जड़ का रस शहद में मिलाकर ज्वर में लाभप्रद है।
ऐकोनिटम वॉयलासियम	रेननकुलेसी	मिठू, तिल्ला दूधिया	झाड़ी	जड़	कन्द का पेस्ट कीडों के काटने पर एवं आतों की जलन में आराम के लिये।
एक्रोरस कैलामस	ऐरेसी	बाजी, बिर्च	झाड़ी	राइजोम	जड़ का गूदा सिर के दर्द में, त्वचा रोग, घाव में सहायक। जड़ का पाउडर कीटनाशक में उपयोग।
एलियम स्ट्रेचियाई	ऐलिएसी	सिमोरी फूल, जम्बू	झाड़ी	पूरा पौधा	सूखा फूल का उपयोग मसालों में ओर कढ़ी पाउडर, रक्त कोलेस्ट्रोल को कम करने, पाचक तंत्र और रंक्त संचरण में सहायक।
एंजेलिका ग्लौका	एपिएसी	चोरा	झाड़ी	फूल	जड़ का पाउडर दूध के साथ मिलाकर खाली पेट लेने से पेट का दर्द दूर होता है।
बर्बेरिस एरिस्टाटा	बर्बिडिएसी	चोथिर, कासमोई, किंगोरा	क्षुप	शाखा	खून को साफ करने में मददगार ।

बर्बेरिस स्यूडोअम्बेलाटा	बर्बिडिएसी	--	क्षुप	छाल, फल	छाल का पाउडर बुखार में तथा फल को पीठ दर्द, पीलिया और मूत्र नलिका में संक्रमण में लाभदायक
कारड़यूस इडिलबर्गियाई	एस्टेरेसी	कन्दारा	झाड़ी	पूरा पौधा	फुस्फुस आवरण ग्रंथि में शोथ को निकालने में सहायक, ज्वर नाशक, मूत्र रोग में लाभदायक।
डेक्टॉलोराईजा हत्थाजडिया	ऑर्किडेसी	हाथजड़ी	झाड़ी	जड़	जड़ का गूदा नसों के टॉनिक में, घाव में, खांसी में, शूगर में लाभदायक ।
डेल्फिनियम डेनूडेटम	रेननकुलेसी	--	झाड़ी	टेण्डर	टेण्डर चाय के साथ लेने में सर्दी में उपयोगी।
डायस्कोरिया डेल्टोइडिया	डायोस्कोरियेसी	गेथी,	बेल	जड़	जड़ का उपयोग पेट के कीड़ों तथा स्टेरॉयडल दवाई बनाने में उपयोग होता है।
फ्रिटिलेरिया रॉयलाई	लिलिएसी	काकोली, शीथकार	झाड़ी	बल्ब	बल्ब का उपयोग टीबी और दमा में उपयोगी।
गुडियेरा फ्यूस्का	ऑर्किडेसी	--	झाड़ी	फूल	सजावटी पुष्प के रूप में उपयोग।
हेबेनेरिया पेक्टिनाटा	ऑर्किडेसी	--	झाड़ी	पता, जड़	पत्तों को चूरकर सांप के काटे में तथा जड़ का उपयोग जोड़ों के दर्द में उपयोगी।
हेडिकियम स्पाईकेटम	जिंजीबरेसी	कपूराचरी	झाड़ी	राईजोम	राईजोम का उपयोग कैंसर की दवाई बनाने तथा तेल बनाने में उपयोग होता है।
होल्बोईलिया लेटिफोलिया	लाडीजाब्लेसी	गोम्फाल	बेल	फल	फल हिमालय में खाया जाता है।
होयूटुयूनिया कोरडाटा	सॉउरूरेसी	--	झाड़ी	पूरा पौधा	हर्बल दवाई बनाने में तथा विषहरण में उपयोगी
ज्यूरीनेला मेक्रोसिफेला	एस्टेरेसी	धूप, गूग्गल	झाड़ी	जड़	जड़ का रस जनजातियों द्वारा संस्कारों तथा धार्मिक अनुष्ठानों किया जाता है।
मैलेक्सिस म्यूसीफेरा	ऑर्किडेसी	रसाबहक	झाड़ी	स्यूडोबल्ब	इसका उपयोग नपुंसकता, दस्त, बुखार, जलन, गठिया बायी और शूगर की बिमारी में उपयोग किया जाता है।
मैकोनोप्सिस एक्यूलिएटा	पेपरावरेसी	कालीहारू	झाड़ी	फूल	फूल की पत्तियों का प्रयोग बुखार में किया जाता है।
मेरस सिरेटा	मोरेसी	--	पेड़	फल,जड़	फल खाद्योपयोगी, जड़ के रस का उपयोग कृमि परजीवी में किया जाता है।
नॉरडोस्टेकिस जटामांसी	वैलेरिएसी	बालछड, जटामानसी		झाड़ी	पौधे के रस का उपयोग हृदय दर्द, मासिक धर्म में और पाचन तंत्र की बिमारी में किया जाता है।

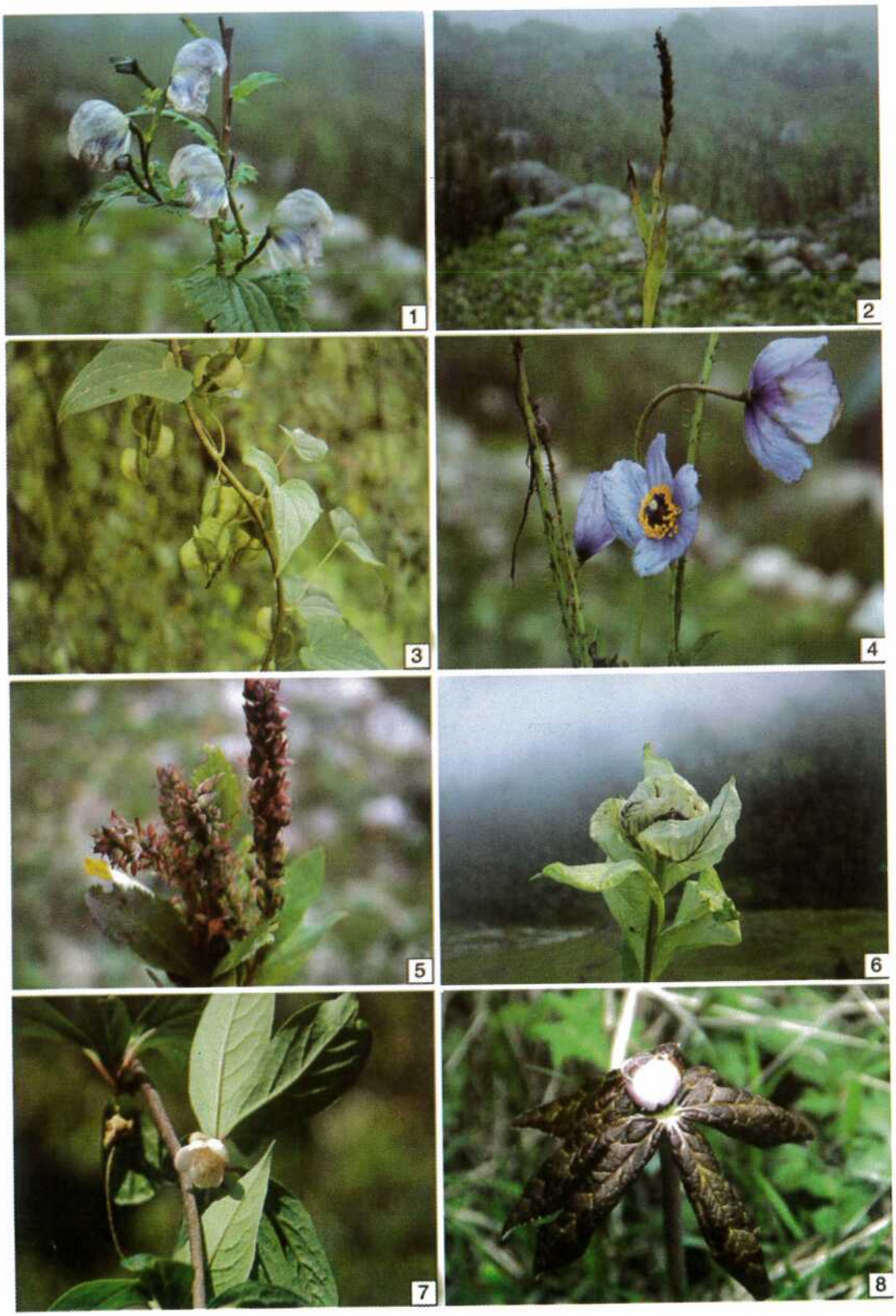

1. *एकोनिटम हेटरोफिल्लम* (अतीश) 2. *डैक्टेलोराईजा हत्थाजरिया* (हाथजड़ी) 3. *डायस्कोरिया डेल्टायडिया* 4. *मैकोनोप्सिस एक्यूलिएटा*
5. *पिक्रोराइजा कुर्रूआ* (कुटकी) 6. *साउसूरिया ओवेलाटा* (ब्रहम कमल) 7. *साईसेन्ड्रा ग्रेन्डीफ्लोरा* 8. *पोडोफायलम हेक्जेन्ड्रम* (वन ककड़ी)

प्योनिया इमोडी	पयोनिएसी	चंद्रा	झाड़ी	पत्ती	इसकी पत्तियों का उपयोग मूत्र रोग में किया जाता है।
पेरिस पॉलिफाइला	टीलिएसी	सतवा	झाड़ी	जड़	इसकी जड़ का उपयोग जहरीले सांप के विष को उतारने में किया जाता है।
पर्नेसिया नूबिकोला	पर्नासिएसी	फूटकया	झाड़ी	पूरा पौधा	इसके पौधे के रस का उपयोग विषाक्त भोजन खाने के उपचार में किया जाता है।
पिक्रोराईजा कुर्रुआ	स्क्रोफुलेरिएसी	कूथाही, कुटकी	झाड़ी	राईजोम	इसके राइजोम का उपयोग एंटीबायोटिक दवा बनाने तथा यकृत सम्बन्धित बिमारी में किया जाता है।
पोडोफायलम हेक्जेन्ड्रम	पोडोफिल्लेसी	फूंगली, काकीडी	झाड़ी	पूरा पौधा	इसका उपयोग डिम्बग्रन्थि के कैंसर के उपयोग में किया जाता है।
पोलिगोनेटम वर्टिसिलेटम	कॉन्चेल्लेरिएसी	साकाकुल	झाड़ी	जड़	जड़ का उपयोग मूत्रवर्धक के रूप में किया जाता है।
रोडोडेनड्रॉन हाइपेनेन्थम	इरिकेसी	अल्तस, अल्तस कोडया	क्षुप	पत्ता	सूखी पत्तियां को चाय पाउडर में इस्तेमाल किया जाता है।
साउसुरिया ओवेलाटा	एस्टेसी	ब्रह्मकमल	झाड़ी	फूल	सांस्कृतिक व धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोग।
साईसेन्ड्रा ग्रेन्डीफ्लोरा	स्किेन्डेएसी	--	क्षुप	फल	खाद्योपयोगी
स्कीमिया एंक्यूटिला	रूटेसी	कथूरचर, केदारपाती	क्षुप	पत्ती	पत्तियों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों तथा धूप बनाने में किया जाता है।
थेलिक्ट्रम फोलियालोसम	रेननकुलेसी	पीली जड़ी, पिंजारी	झाड़ी	पूरा पौधा	जड़ ज्वरनाशक, पत्तियों का रस फोड़े–फुंसियों में उपयोगी।

पार्वती अरंगा वन्य जीव अभयारण्य, तराई क्षेत्र (गोंडा) , उत्तर प्रदेश की जैव–विविधता

विनीत कुमार सिंह एवं एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक धरोहर के साथ ही मीठे पानी के झीलों के लिए सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। इन झीलों मे प्रत्येक वर्ष लाखों की संख्या में प्रवासी परिंदे हजारों किलोमीटर कि ऊँची उड़ान तय करके हिमालय को पार कर रूस, चीन एवं अन्य कई यूरोपीय एवं ठंडी जलवायु वाले देशों से शीतकालीन प्रवास के लिए नवम्बर माह की शुरुआत में आते हैं एवं बसंत ऋतु के समाप्त होने के साथ ही अपने – अपने देश को लौट जाते हैं।

भगवान राम की जन्म स्थली अयोध्या से लगभग 21 किलोमीटर उत्तर पश्चिम मे पार्वती अरंगा झीलें, गोंडा जनपद के तरबगंज तहसील के अंतर्गत टिकरी आरक्षित वन के निकट 27°58′ 12.5″ उत्तरी अक्षांश और 82°09′ 28.3″ पूर्व देशांतर एवं समुद्र तल से 81 मी. ऊपर अवस्थित है। ये झीलें गोखुर आकार की हैं। वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 के अंतर्गत वन्य जीवों एवं इनके पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन एवं विकास हेतु इस वन्य जीव अभयारण्य की अधिसूचना उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के द्वारा मई 23, 1990 को जारी की गई । इसके उपरांत संरक्षित क्षेत्र भौतिक रूप से वन्य जीव परिरक्षण के नियंत्रण में आया। इस वन्य जीव अभयारण्य का कुल क्षेत्रफल 1084.47 हेक्टेयर है । यहाँ से मात्र एक किलोमीटर की दूरी पर टिकरी का आरक्षित वन क्षेत्र है। यह क्षेत्र सरयू नदी के अवशेष हैं। इस वन क्षेत्र में अनेक जलीय एवं स्थलीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

जलीय वनस्पतियाँ – जलीय पादपों को उनके उगने के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **जल निमग्न पादप**–ये पौधे जल के सतह के नीचे उगते हैं परंतु यह आवश्यक नहीं है कि उनकी जडें भूमि से जुड़ी ही हों । ये पौधे उथले जल क्षेत्र मे पाये जाते हैं। सामान्यतः *सेर्राटोफिल्लम सबइम्मरसम, सेर्राटोफिल्लम डिम्मरसम, हाइड्रीला वर्टिसिल्लाटा, नाजुस इंडिका, पोटेमोजिटोन क्रिसपस, पोटामोजिटोन पेक्टिनेट्स, यूट्रिकुलेरिया आउरिया* आदि ।
2. **स्वतंत्र जल में तैरते हुये पादप**– ये पौधे जल सतह के ऊपर उगते हैं, इनकी जडें पानी में लटकती रहती हैं एवं वायु बहाव से इनका स्थान परिवर्तित होता रहता है। इस श्रेणी में मुख्यत–*आइकॉर्निया क्रेस्सीपेस, वोल्फिया ग्लोबोसा, एजोल्ला पिन्नाटा, सालविनिया कुकुलटा, लेमना पर्पउसिल्ला* आदि उगते हैं।

3. स्थायी जल में तैरने वाले पादप– इन पौधों की जड़ें भूमि में धंसी होती हैं लेकिन पत्तियाँ जल सतह के ऊपर तैरती रहती हैं। इस श्रेणी मे *निमफिया नऊचालाई, निमफिया पिउबेसैन्स, निलम्बो नुसीफेरा, निम्फोइडेस हाइड्रोफिला, निम्फोइडेस इंडिका, मर्सिलिया माइन्यूटा, केलडेस्सिया ओलिगोकोक्का* आदि आते हैं।

4. अर्धनिमग्न पादप– इस प्रकार के पादप अपनी जडें एवं कन्द मृदा में ही रखते हैं साथ ही तना ऊपर की ओर बढ़ता रहता है। इसके अंतर्गत *आइपोमिया कारनियां, टाइफा अंगस्टीफोलिया, स्क्रिपस मुकोरोनाटस, सेजीटेरिया गुयानेंसिस, साइप्रस ब्रवीफोलिऔस, साइप्रस डीफोर्मीस, साइप्रस नूटन्स, साइप्रस रोटण्डस, बक्कोपा मोनेर्री, सेंटेल्ला एशियाटिका* आदि आते हैं।

शाक वनस्पतियाँ– शाक पादपों में मुख्यतः *बैकोपा मोनेर्री, सेंटेल्ला एशियाटिका, हेलिओट्रोपीकम इंडिकम, स्पिलान्थेस सिलियाटा, लेउकस सेफालोटस, बोरहाविया डिफ्यूसा, इक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा, रेननकुलस स्कीलिरेटस, वर्नोनिया सिनेरिया, यूफोर्बिया हिर्टा, केन्नाबिस सैटाइवा, ओक्सैलिय कोर्निकुलाटा, फाइलेन्थस फ्रटेर्नस, लिंडर्निया सिलियाटा, लिंडर्निया क्रिसटेसिया, टेफरोसिया परपूरिया, आरजिमोन मैक्सीकाना, सेन्ना टोरा, सेन्ना ऑक्सीडेनटेलिस, एकेरेन्थस एस्परा, एमारेन्थस विरीडिस, एमारेन्थस स्पिनोसस, फाइसेलिस मिनिमा, सिडाअकुटा, सिडा कोर्डटा, ट्राइडक्स प्रोकमबेन्स, स्कोपेरिया डलसिस, अम्मानिया बस्सीफेरा* इत्यादि।

घासें– इस अभयारण्य में कई प्रकार की घासें जैसे *एरगोइस्टिस सिलियरीस, साइनेडोन डिक्टीयोन, पेनीकम पेल्लुसिडम, सैकेरम स्पोनटेनियम, सैकेरम मुंजा, वेटिवेरिया जिजनवाइडस, सेंक्रस सिलियरीस, हायग्रोराइजा आरिसटाटा, ओराईजा रुफीपोगोन, सेटरिया ग्लौका, सीटेरिया टोमेनटोसा,ओपलिसमेनस बर्मन्नई* इत्यादि पायी जाती हैं।

लतायें–*टिनोस्पोरा कोर्डीफोलिया, मोमोर्डिका चट्रंटिया, कस्कुटा रेफलेक्सा, कोक्सिनिया ग्रांडिस, आइपोमीया केरिका, पेस्सीफ्लोरा फोएटिडा, ओकसीटेलमा एस्कुलेंटुम, ग्लोरिओसा सुपर्बा, मेररेमिया एजिपटिया, ड्रीजिया वोलुवुलिस, डिओस्कोरेया बुल्बीफेरा, मेलोथीरिया मद्रास्पटाना, मुकुना प्रूरिएन्स, कोक्कुलस हिर्सुटस, हेमिडेसमस इंडिकस, अमपेलोसिसस लाटीफोलिया* आदि लतायें विभिन्न वृक्षों के ऊपर मालाओं की तरह लिपटी होती हैं। ये लतायें किसी भी जंगल के अच्छे स्वास्थ्य की सूचक होती हैं।

झाड़ियां– यहाँ अनेक प्रकार की झाडियाँ भी पाई जाती हैं, जैसे *आधाटोडा वसाका, अबुटीलोन इंडीकम, रिसीनस कोम्युनिस, केलोट्रोपिस जाईगेंटिया, केलोट्रोपिस प्रोसेरा, सेन्ना ऑक्सीडेंटलिस, सेन्ना टोरा, जेन्थियम स्ट्रुमेरियम, वाईटेक्स निगनडू, फाईलेनथस रेटीकुलेटस, सिसलपिनिया बोनडक, डेस्मोडियम गंगेटिकम, क्लेओम विसकोसा, क्लेओम गायनेन्ड्रा, क्लेरोडेंड्रम इण्डिकम, सिडा कोर्डीफोलिया* इत्यादि ।

वृक्ष– इस अभयारण्य मे कई जातियों के वृक्ष पाये जाते हैं, जिनमें मुख्य रूप से *टर्मिनेलिया अर्जुना, सिजाईजियम क्यूमिनी, कैशिया फिस्टुला, जिजीफस ओएनोपलिया, फाइकस रेलीजिओसा, फाइकस बेंघालेन्सिस, फाइकस विरेन्स, डलबर्जिया सिस्सो, एलनजियम साल्वीफोलिएम, मैंगीफेरा इंडिका* आदि वृक्ष मुख्य हैं ।

इन वनस्पतियों के साथ ही यहाँ पर विभिन्न प्रकार के प्रवासी एवं शीत ऋतु में अनेक अप्रवासी पक्षी, सरीसृप, स्तनपायी एवं कई अकशेरुकी जीव भी पाये जाते हैं। प्रवासी एवं स्थानीय प्रवासी पक्षी जिनमें सुर्खाब, पिनटेल, कूट, कॉमन पोचार्ड, रेड क्रेस्टेड पोचार्ड, स्कोप डक स्पॉटबिल, ग्रे लेग गूस, कॉमनटील, रोजी पेलिकन, स्टिंट गाडविट, रेड शैंक, ग्रीन शैंक, वेगटेल, ओपेन बिल्ड स्टोर्क, ब्लैक नेक्कड स्टोर्क, पॉण्ड हेरोन, लिटल एरगोट, कोम्ब डक, किंग फिशर आदि पक्षी कई शीत राष्ट्रों से आते हैं। सारस, डुबडुबी, जलकौआ, नकटा, सिलही, विभिन्न प्रकार के बगुले, इंडियन एवं पर्पल मूरहेन, जलमुर्गी, फिजेण्ट टेलड जकाना, नीलकंठ, हुदहुद, बया, बुलबुल, हरियल, ग्रे धनेश, लहबर तोता, चित्तीदार मुनिया, जंगली कबूतर, टिटहरी, फाखता तथा मोर आदि स्थानीये परिंदों का भी आश्रय स्थल हैं, यहाँ प्राप्त होने वाले विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं अकशेरुकी जीवों पर निर्भर रहते हैं, जिसका विवरण निम्नवत है।

क्र.स.	वानस्पतिक नाम	हिन्दी / स्थानीय नाम	प्रकृति	उपयोगी भाग	पक्षियों के नाम
1.	*अजोला पिन्नाटा*	भूरी काई	स्वतंत्र तैरते हुये	पत्तियाँ	लगभग सभी बतखें
2.	*आइकॉर्निया क्रस्सीपेस*	जलकुंभी	स्वतंत्र तैरते हुये	वृंत का फूला भाग	पर्पल स्वांपहेन एवं लेस्सर व्हिस्टि्लंग डक
3.	*जूससीया रिपेन्स*	गहदी	स्वतंत्र तैरते हुये	जड़ एवं तना	कॉमन कूट, कॉमन तील, पिंटेल एवं पर्पल स्वांपहेन

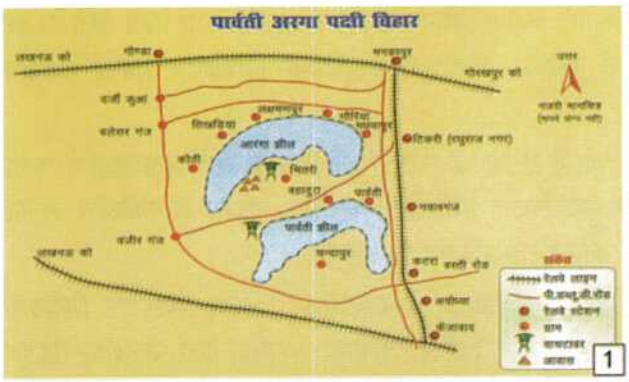

1. पार्वती अरंगा वन जीव अभयाण्य का मानचित्र 2. कलिहारी लता (*ग्लोरिओसा सुपर्बा*) 3. अभयारण्य का एक दृश्य
4. अभयारण्य में जल *निमफिया नऊचालाई* एव अन्य जलीय वनस्पतियाँ

4.	*लेम्ना पेर्पूसिल्ला*	हरी काई	स्वतंत्र तैरते हुय	पत्तियाँ	नॉर्थन शोवेलर एवं मल्लार्ड
5.	*पस्टिया स्ट्राटिओटेस*	जल गोभी	स्वतंत्र तैरते हुये	नई पत्तियाँ	कॉमन कूट
6.	*स्पैरोडेला पॉलीर्हिजा*	हरी काई	स्वतंत्र तैरते हुये	पत्तियाँ	यूरेसियन विगेओन, नॉर्थन शोवेलर एवं फेरूगिनौस पोचार्ड
7.	*वोल्फिया अर्हिजा*	जल जंजाल	स्वतंत्र तैरते हुये	सम्पूर्ण पादप	कॉमन पोचार्ड, मल्लार्ड एवं रेड क्रेस्टेड पोचार्ड
8.	*निलूम्बो नूसीफेरा*	कमल	स्वतंत्र तैरते हुये	बीज	कॉमन कूट और पोचार्ड
9.	*निम्फिया नौचेली*	कुमुदिनी	स्वतंत्र तैरते हुये	फल एवं बीज	नॉर्थन पिनटेल, कॉमन तील, रेड क्रेस्टेड पोचार्ड, कॉमन कूट एवं कॉमन पोचार्ड
10.	*निम्फोइडेस क्रिसटेटम*	जलरानी	स्वतंत्र तैरते हुये	फूल, बीज एवं पत्तियाँ	कॉमन तील एवं नॉर्थन पिनटेल
11.	*आइपोमिया एक्वेटिका*	करमुया	स्वतंत्र तैरते हुये	तना, पत्तियाँ एवं फूल	कॉमन कूट, यूरेसियन विगेओन एवं पोचार्ड
12.	*सिराटोफ्ल्लुम डीमरसम*	खाजा चोट्टी	जल निमग्न	फूल एवं बीज	कॉमन कूट, कॉमन तील एवं गडवालल
13.	*हायड्रिला वर्टिसिल्लाटा*	सेवार	जल निमग्न	तना, पत्तियाँ एवं फूल	कॉमन कूट, कॉमन तील एवं नॉर्थन पिनटेल

14.	*नैजस ग्रैमिनिया*	कटेली सेवार	जल निमग्न	बीज एवं पत्तियाँ	कॉमन कूट, कॉमन तील एवं नॉर्थन पिनटेल
15.	*पोटेमोजिटोन नोडोसस*	सागो पोन्ड वीड	जल निमग्न	बीज	पर्पल स्वांपहेन, कॉमन कूट एवं नॉर्थन शोवेलर
16.	*वल्लीस्नेरिया स्पाइरलिस*	फीता घास	जल निमग्न	बीज एवं पत्तियाँ	कॉमन कूट, कॉमन तील, गडवालल, नॉर्थन पिनटेल एवं रेड क्रेस्टेड पोचार्ड
17.	*अरुण्डो डोनक्स*	बलेहरा	अर्धनिमग्न	बीज	कॉमन तील एवं पर्पल स्वांपहेन
18.	*क्लोरिस बारबेटा*		अर्धनिमग्न	बीज	कॉमन तील, नॉर्थन पिनटेल एवं यूरेसियन विगेओन
19.	*कोम्मेलिना हस्कर्ली*	ऊना	अर्धनिमग्न	जड़ एवं फल	कॉमन कूट, ग्रे लेग गूस एवं पर्पल स्वांपहेन
20.	*साइप्रस रोटुंडस*	मोथा	अर्धनिमग्न	नई पत्तियाँ एवं फल	कॉमन कूट, ग्रे लेग गूस एवं नॉर्थन पिनटेल
21.	*इलिओकारिस डलसिस*	पोला	अर्धनिमग्न	जड़ एवं कोमल तना	ग्रे लेग गूस एवं यूरेसियन विगेओन
22.	*ओरयजा रुफिपोगोन*	तिन्नी	अर्धनिमग्न	बीज	कॉमन तील एवं पर्पल स्वांपहेन
23.	*पॉलीगोनम बारबेटम*	अंजुयार	अर्धनिमग्न	तना एवं पत्तियाँ	कॉमन तील एवं पर्पल स्वांपहेन
24.	*स्किर्पस आर्टिकुलेटस*	छिछोरा	अर्धनिमग्न	बीज	पर्पल स्वांपहेन
25.	*टायफा एंगसटिफोलिया*	हाथी घास	अर्धनिमग्न	तना	पर्पल स्वांपहेन

संकट एवं संरक्षण– यह अभयारण्य जैव विविधिता से परिपूर्ण होने के साथ ही कुछ अति–महत्वपूर्ण वनस्पतियों का आश्रयस्थली भी है। इससे सटे हुए गाँव में रहने वाले लोग अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए यहाँ की पादप विविधिता पर निर्भर हैं एवं पालतू जानवरों के चारागाह, कृषि योग्य भूमि के विस्तारण के कारण धीरे– धीरे इनका क्षरण हो रहा है। शीत ऋतु मे प्रवासी पक्षियों को देखने के लिए दूर–दूर से लोग आते हैं, जिसकी वजह से गंदगी फैलती है। यहाँ कमल गट्टे एवं कमल ककड़ी का अनुचित रूप से दोहन हो रहा है। हमें इसके संरक्षण के लिए आम जनमानस को वन्य जीवों एवं वनस्पतियों का पर्यावरण संरक्षण में महत्व के बारे में जागरुक करने के साथ ही उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करना होगा ।

वृक्षारोपण कार्य महान, एक वृक्ष सौ पुत्र समान ।

(च) बीज : *बुकानानिया लांजान, कोआयक्स लेकिमा–जोबि, इकाइनोक्लोआ स्टागनिना, इल्यूसिन इंडिका, नेलुम्बो नूसीफेरा, पास्पालिडियम फ्लाविडम, पास्पालुम स्क्रोबिकुलेटम, स्टरकुलिया यूरेंस, टायरिडस इंडिका* आदि।

14.तेल : *बुकानानिया लांजान, मधुका लोंगीफोलिया* उपजाति *लेटिफोलिया, नेलुम्बो नूसीफेरा, स्लेचेरा ओलेओसा, टेरोकार्पस मारसूपियम, वेटिवेरिया जिजानिआइडेस* आदि।

15. औषधीय पौधे : रानीपुर वन्य जीव अभयारण्य में वनस्पति–विविधता की प्रचुरता के परिणामस्वरुप यहां विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे पाये जाते हैं, जिनमें कुछ प्रमुख पौधों के औषधीय गुणों का विवरण नीचे दिया गया है :

एब्रस प्रेकाटोरियस : जड़ एवं पत्तियां – खांसी, सर्दी।

जस्टिसिआ एढ़ाटोड़ा : पत्तियां – ज्वर, खांसी।

ऐजेल मारमेलोस : छाल – ज्वर ; पत्तियां – मधुमेह ; फल – अतिसार, पेचिस।

एस्परेगस रेसीमोसस : जड़ – स्फूर्ति एवं मूत्रवर्धक।

बैकोपा मोनेरी : पौधा– मानसिक विकार, मिर्गी, पागलपन; पत्तियां– मूत्रवर्धक।

बाऊहिनिया रेसिमोसा : छाल – अतिसार, पेचिश ; पत्तियां – मलेरिया।

बाऊहिनिया वेरीगाटा : जड़ – मोटापा ; छाल – कुष्ठ रोग।

बोरहाविया डिफ्यूसा : जड़ – दमा, पीलिया, एवं अमाशय के विकार।

बोम्बैक्स सीबा : जड़ – नपुंसकता ; छाल – ताकत।

ब्यूटिया मोनोस्पर्मा : गोंद – अतिसार।

कार्डियोस्पर्मम हालिकाकाबुम : जड़ – कमर तथा जोड़ों का दर्द।

केरिया अरबोरिया : छाल – ज्वर ; फूल – खांसी, सर्दी।

कैसिया फिस्टुला : पत्तियां – चर्म रोग ; फल – कब्ज।

सेंटेला ऐशियाटिका : पौधा – कुष्ठ रोग ; पत्तियां – गर्मी एवं याददास्त् बढ़ाना।

काक्लोस्पर्मम रिलिजियोसम : गोंद – ताकत, खांसी, सूजाक।

कुरकुलिगो आर्किआयडेस : प्रकन्द – नपुंसकता, ताकत, बवासीर, पीलिया, दमा।

सिम्बोपोगोन मार्टिनी : पत्तियों का तेल – कमर एवं जोड़ों का दर्द।

डेस्मोडियम गानजेटिकम : जड़ – ताकत, ज्वर, खांसी, उल्टी।

डायस्कोरेया बल्बिफेरा : बवासीर, उपदंश।

इलेफानटोपस स्कावेर : जड़ – मलेरिया, पीलपांव; पत्तियां – खाज।

फाइलेन्थस इम्बलिका : फल–अल्परक्तता, पीलिया, ताकत, कब्ज, ष्वांस–रोग

फाइकस रेसिमोसा : जड़ – पेंचिस, मधुमेह; दूध – अतिसार, बवासीर।

ग्लोरिओसा सुपर्बा : प्रकन्द–बवासीर, कुष्ठ रोग, आंत के कृमि, सूजाक, गर्भपात।

मेलिना आरबोरेया : जड़ – ज्वर, अपचन, दुर्बलता, गठिया; पत्तियां – फोड़े; फल–ज्वर।

ग्रांगेया मॉडेरोप्टाना : पत्तियां – कान का दर्द।

हेलिक्टेरेस आइसोरा : जड़, छाल व फल – अतिसार, पेंचिस।

हेमिडेसमस इंडिकस : जड़ – ज्वर, जोड़ों का दर्द, गर्मी, गुर्दों की पथरी, दुर्बलता, श्वेत प्रदर।

होलारेना पूबेसेंस : जड़ – अतिसार, पेंचिस, बवासीर, आंत्रशोथ।

इकनोकार्पस फ्रूटेसेंस : जड़–ज्वर, मधुमेह, गुर्दे की पथरी; तना – सिरदर्द, ज्वर।

मधुका लोंगीफोलिया उपजाति *लेटिफोलिया* : जड़ – फोड़े; छाल – मधुमेह, जोड़ों का दर्द; पुष्प – खांसी, अनिद्रा, दुर्बलता; बीज – बवासीर, कब्ज, सिरदर्द।

मुकुना प्रूरियेंस : जड़ – नपुंसकता, गुर्दे एवं यकृत के रोग, जलोदर; फल – नपुंसकता; बीज – दुर्बलता।

निलुम्बो न्यूसीफेरा : प्रकन्द – त्वचा संबंधी रोग; पुष्प – अतिसार, पेचिस; बीज – अपचन, आंत्रशोथ।

ओसिमम कानुम : पत्तियां – सर्दी, खांसी, चर्मरोग; बीज – मूत्र जनित रोग।

ओलडेंलांडिया कोरिमबोसा : पौधा – ज्वर, पीलिया, उदासी।

पोनगामिया पिन्नाटा : छाल – बवासीर, बेरी–बेरी; टहनी – दांत का दर्द व दांत की सफाई; पत्तियां – खांसी, अतिसार, सूजाक, कुष्ठ रोग; पुष्प – मधुमेह।

टेरोकार्पस मारसूपियम : काष्ठ – मधुमेह; गोंद – अतिसार, पेचिस; पत्तियां – छाले, फोड़े; पुष्प – ज्वर।

राडेरमाचेरा जाइलोकार्पा : जड़ – घाव; फल – सर्पदंश।

स्कोपारिया डल्सिस : पौधा – अतिसार, पेचिस, अल्परक्तहीनता; पत्तियां – खांसी, जुखाम, ज्वर, गुर्दे की पथरी।

सेमेकार्पस एनाकार्डियम : फल – दमा, मिर्गी, जोड़ों का दर्द, आंत के कृमि, चर्म रोग ('सोरिएसिस')।

सिडा कोर्डिफोलिया : जड़ – मूत्रजनित रोग, सूजाक, दुर्बलता, सायटिका; पत्तियां – पेचिस, ज्वर, फोड़े।

स्फेरानथस इंडिकस : पौधा – यकृत एवं पेट की बीमारियां; जड़ – खांसी, सीने का दर्द, मल सम्बंधी विकार; पुष्प –शक्तिवर्धक।

सिजाईजियम कुमिनि : छाल – पेचिस, आंत्रशोथ, मन्दाग्नि; फल – आंत्रषोथ; बीज – मधुमेह।

टरमिनेलिया अर्जुना : छाल – उच्च रक्तचाप, हृदय बलवर्धक, पेचिस, यकृत–कैंसर; पत्तियां – कान का दर्द।

टरमिनेलिया बेलिरिका : फल – बवासीर, जलोदर, सिरदर्द, कुष्ठ रोग, कब्ज।

टरमिनेलिया चेबुला : फल – कब्ज, दांत का दर्द, दमा, फोड़े।

ट्राइडक्स प्रोकमबेंस : पत्तियां– अतिसार, पेचिस, रक्तस्राव।

यूरेरिया पिक्टा : जड़ – ज्वर, खांसी, सूजाक, नपुंसकता, हृदय रोग।

वान्डा टेसेलाटा : पौधा–सायटिका; जड़–सर्दी, जोड़ों का दर्द, तपेदिक; पत्तियां–टूटी हडिडयों को जोड़ना, ज्वर।

वाइटेक्स नेगुंडो : जड़ – ज्वर, सर्दी, दर्द, आंत के कृमि, दुर्बलता; पत्तियां – जोड़ों का दर्द, मांसपेसियों की खिंचाव, कुष्ठ रोग, ज्वर।

हमारी पृथ्वी पर सभी के पोषण के लिये पर्याप्त संशाधन हैं,
किन्तु हमारे लालच के लिये इसके सारे संशाधन भी अपर्याप्त हैं।
–राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

पौधों के साथ–साथ जंतु विविधता के लिए भी यह क्षेत्र काफी महत्वपूर्ण है। 41 स्तनपायी जातियों में से 6 स्थानिक जातियाँ पश्चिमी घाट से पायी गयी हैं। जिनमें शेर पूंछ मकाक, नीलगिरी लंगूर, भूरे रंग ताड़ वाले सिविट, गर्दन पर पट्टी वाले नेवले, सावली ताड़ के गिलहरी और मालाबार काँटेदार डोर माउस प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अभयारण्य में पक्षियों की 180 जातियाँ, तितलियों की 148 जातियाँ, सरीसृप की 34 जातियाँ, की 38 जातियाँ और मछलियों की 52 जातियाँ पाई जाती हैं। रीढ़ मेंढ़क *फिलौटस ओक्लांड्री* उभयचर की एक जाति हैं, उसे अभी तक केवल मालाबार वन्य जीव अभयारण्य के ककायम वन क्षेत्र से ही अभिलेखित किया गया है।

अभयारण्य के उत्तरी भाग का 54.21 वर्ग कि.मी. का क्षेत्र कोर जोन के रूप में पहचाना जाता है। अभयारण्य का मध्य भाग जो लगभग 5. 57 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है, उसे पुर्नस्थापित क्षेत्र के रूप में पहचाना गया है, क्योंकि यहाँ एक बार वृक्षारोपण नष्ट हो चुका था। अभयारण्य का 6.5 वर्ग कि. मी. क्षेत्र जो मानव आवास से सटा हुआ है, उसे बफर जोन (मध्य क्षेत्र) घोषित किया गया है। पर्यावरणीय पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पर्यटन क्षेत्र में इकोटूरिज्म गतिविधियाँ भी स्वीकृत की गई हैं।

मालाबार वन्य जीव अभयारण्य कोझीकोडे जिले के लिये जल संचयन का भी कार्य करता है एवं अरालम मालाबार वन्य जीव अभयारण्य, वायनाड मालाबार वन्य जीव अभयारण्य (जो स्वयं नागरहोल, बांदीपुर और मुदुमलयी वन्य जीव अभयारण्य के संरक्षित क्षेत्रीय तंत्र के साथ संनिहित है) वन्य जीवों के लिए एक लंबी प्राकृतिक आवास श्रृंखला प्रदान करता है। अतएव यह पूरा पर्यावरणीय क्षेत्र एक व्यापक परिदृश्य आधारित संरक्षित क्षेत्र के रूप में एकीकृत किया जा सकता है। यह प्रयास वन्य जीवों के बीच संयोजकता में सुधार और आवास विखंडन को रोककर जैव विविधता एवं जैव संरक्षण को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा । आवास विखंडन जैव विविधता की क्षति का मुख्य कारण है, इसलिए इसे रोकने के लिए संरक्षित क्षेत्र में एक व्यापक प्रबंधन नीति बनायी जानी चाहिए जिससे मौजूदा संरक्षित क्षेत्र एवं दूसरे अन्य संरक्षित क्षेत्र में स्थित जीवों के बीच आदान प्रदान एवं एक दूसरे के बीच जीन के प्रवाह को बढ़ाया जा सके, ताकि इस संरक्षित क्षेत्र को और भी अधिक प्रभावी ढंग से सुरक्षित किया जा सके।

"उस जीवन को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं,
जिसको बनाने की शक्ति हममें नहीं है – राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी"

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केन्द्र, गान्तोक के वानस्पतिक उद्यान की पादप विविधता एक अवलोकन

चन्दन सिंह पुरोहित
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

पर्यावरण एवं वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अन्तर्गत भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के सिक्किम हिमालय केन्द्र, गान्तोक की स्थापना 28 दिसम्बर 1979 को हुई जो वन कालोनी में सेघा बिल्डिंग को किराए पर लेकर प्रारंभ किया गया । सन् 1996 में राजभवन के पास कार्यालय की स्वंय की ईमारत बन गई व कार्यालय को इसमें स्थानान्तरित कर दिया गया। सन 2009 में इस कार्यालय का नाम सिक्किम हिमालय केन्द्र से बदलकर सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केन्द्र कर दिया गया। परिसर 3.5 एकड़ में फैला हुआ है, जिसमें प्राकृतिक रूप से वृक्ष, झाड़ी, शाक एवं खरपतवार उगती हैं। वानस्पतिक उद्यान में एक ऑर्किड तथा कांच घर भी है जो सन् 2000 में बनवाए गए थे। जिसमें विभिन्न प्रकार की जातियों जैसे ऑर्किड, बिगोनिया, फर्न, इत्यादि का रखरखाव किया जाता है। इसके अलावा सिक्किम में उगने वाले अनेक औषधीय महत्व के उपयोगी पादप, वृक्ष, पाम, वृक्ष फर्न इत्यादि पादपों को उद्यान में पुनःस्थापित कर उनका रखरखाव किया जाता है।

उद्यान में लगे दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी में आने वाल पादपों को निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

कुल	वानस्पतिक नाम	प्रकृति	प्राकृतिक / पुनःस्थापित	पुष्पन–फलन
एकोरेसी	*एकोरस केलेमस*	शाक	प्राकृतिक	अप्रैल से जुलाई
एरेलिएसी	*स्किफलेरा बेन्घालेनसिस*	झाड़ी	पुनः स्थापित	फरवरी से मार्च
एरिकेसी	*प्लेक्टोकोमिया हिमालयाना*	झाड़ी	प्राकृतिक	जून से अगस्त
केन्नेसी	*केनाजन रेलिस*	शाक	प्राकृतिक	अप्रैल से अगस्त
कुकरबिटेसी	*ट्राइकोसेन्थस लेपियाना*	शाक	प्राकृतिक	अप्रैल से सितम्बर
इलियोकार्पेसी	*इलियोकार्पस स्फेरिकस*	वृक्ष	प्राकृतिक	अप्रैल से मई
इरिकेसी	*एगापेटिस स्मिथियाना*	शाक	प्राकृतिक	अप्रैल से दिसम्बर
	रोडोडेन्ड्रॉन वेक्सिनियोइडिस	झाड़ी	प्राकृतिक	मई से जुलाई
हाइड्रेंजिएसी	*हाइड्रेन्जिया मेक्रोफाइला*	झाड़ी	पुनः स्थापित	जून से अक्टूबर
लोरेसी	*सिनेमोम मग्लेन्डुलिफेरम*	वृक्ष	प्राकृतिक	मार्च से सितम्बर
	परसिया फ्रुक्टिफेरा	वृक्ष	प्राकृतिक	मार्च से अक्टूबर
लिलिएसी	*माइकेलिया डोल्टसोपा*	वृक्ष	पुनः स्थापित	अप्रैल से अक्टूबर
ऑर्किडेसी	*एरिडिस रोजिया*	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	अगस्त से अक्टूबर
	एस्कोसेन्ट्रम एम्पुलेसियम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	मार्च से अप्रैल
	केलेन्थी हरबेसिया	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	जून से जुलाई
	सिलोगाइनी बारबेटा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	सितम्बर से नवम्बर
	सिलोगाइनी क्रिस्टेटा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	अप्रैल से जून
	सिलोगाइनी फ्लेसिडा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	मार्च से मई
	सिलोगाइनी नाइटिडा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	अक्टूबर से जनवरी
	सिलोगाइनी प्रोलिफेरा	एपिफाइट शाक	पुनः स्थापित	जुलाई से जुलाई
	सिम्बिडियम इबरनम	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	अक्टूबर से नवम्बर
	सिम्बिडियम इरिथ्रियम	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	अक्टूबर से दिसम्बर
	सिम्बिडियम टाइग्रिनम	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	अप्रैल–मई

	सिम्बिडियम लोंगिफोलियम	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	सितम्बर से अक्टूबर
	सिम्बिडियम वाइटी	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	नवम्बर–दिसम्बर
	डेन्ड्रोबियम इरिफ्लोरम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	सितम्बर से अक्टूबर
	डेन्ड्रोबियम फलकोनेरी	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	फरवरी से मार्च
	डेन्ड्रोबियम फिमब्रिएटम प्रभेद *ओकुलेटम*	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	अप्रैल से मई
	डेन्ड्रोबियम हेटेरोकार्पम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	फरवरी से मार्च
	डेन्ड्रोबियम पेरिसी	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	जून–जुलाई
	डेन्ड्रोबियम वारडिएनम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	फरवरी से मार्च
	एपिजिनियम फ्युसेन्स	अधिपादप शाक	प्राकृतिक	अक्टूबर से नवम्बर
	इरिया एसरवेटा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	जून से जुलाई
	इरिया क्लोजा	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	फरवरी से मार्च
	इरिया प्युमिला	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	अगस्त–सितम्बर
	ओटोचिलस एल्बस	अधिपादप शाक	प्राकृतिक	जून से जुलाई
	ओटोचिलस फ्युस्कस	अधिपादप शाक	प्राकृतिक	दिसम्बर–जनवरी
	फेफियोपेडिलम स्पाइसिरिएनम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	नवम्बर से जनवरी
	फेफियोपेडिलम विल्लोसम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	नवम्बर से फरवरी
	फेयसमि समेंसिस	शाक	पुनः स्थापित	सितम्बर से अक्टूबर
	फ्रेटिया इलिगेन्स	स्थलीय शाक	पुनः स्थापित	अगस्त से सितम्बर
	पोमेटोकाल्पा स्पिकेटम	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	मई से जून
	रिनेन्थिराइम्स कूटियाना	अधिपादप शाक	पुनः स्थापित	मई से जूलाई
स्टरकुलिएसी	*केरियोटा यूरेन्स*	वृक्ष	प्राकृतिक	अप्रैल से जून
एरिकेसी	*ट्रेकीकारपस मारटिएनस*	ताड़ वृक्ष	पुनः स्थापित	मार्च से जून
रोजेसी	*प्रुनस डेविडियाना*	वृक्ष	पुनः स्थापित	मार्च से जून
सेक्सिफ्रेगेसी	*बरजिनिया सिलिएटा*	शाक	प्राकृतिक	अप्रैल से मई
सोलेनेसी	*सेस्ट्रम नोक्टरनम*	झाड़ी	पुनः स्थापित	जूलाई से अक्टूबर
जिन्जीबेरेसी	*अमोमम डेलबेटम*	शाक	पुनः स्थापित	अप्रैल से मई
	किम्फेरा रोटन्डेटा	शाक	पुनः स्थापित	मार्च से मई

सिक्किम वानस्पतिक उद्यान के अनावृत्तबीजी पादपों की सूची

कुल	वानस्पतिकनाम	प्रकृति	प्राकृतिक पुररूस्थापित	श्रेणी
क्युप्रेसेसी	*थुजा ओरियेन्टेलिस*	झाड़ी	पुनः स्थापित	दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी
	थुजा वेरियगेटा	झाड़ी	पुनः स्थापित	दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी
टैक्सेसी	*सिफेलोटेक्सस ग्रिफिथाई*	वृक्ष	पुनः स्थापित	दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी
	टैक्सस वेलिचियाना	वृक्ष	प्राकृतिक	दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी
टेक्सोडियोसी	*क्रिप्टोमेरिया जेपोनिका*	वृक्ष	प्राकृतिक	सामान्य
पाइनेसी	*सूगा डुमोसा*	वृक्ष	पुनः स्थापित	सामान्य
	एबिज डेन्सा	वृक्ष	पुनः स्थापित	सामान्य
जिंकोएसी	*जिंको बाइलोबा*	झाड़ी	पुनः स्थापित	दुर्लभ एवं लुप्तप्रायः श्रेणी

1. *एस्किनेन्थिस सिक्किमेन्सिस*, 2. *एगापेटिस सरपेन्स*, 3. *एरिसिमा कोन्सिनम*, 4. *एरिसिमा स्पेसियोसम*, 5. *निपेन्थिस खासियाना*, 6. *बरजिनिया सिलिएटा*, 7. *हेडिकियम कॉक्सिनियम*, 8. *एरिसिमा टोरटोसम*, 9. *हेडिकियम गारडनेरियम*, 10. *माइकेलिया डोल्टसोपा*, 11. *ट्राइकोसेन्थिस कसपिडाटा*, 12. *किम्फिएरा रोटन्डा*

1. *एकेम्पी रिजिडा*, 2. *एरिडिस ओडोरेटा*, 3. *एरिडिस रोजिया*, 4. *एरिडिस मल्टीफ्लोरम*, 5. *बल्बोफिलम एक्यूटीफोलियस*, 6. *बल्बोफिलम लियोपार्डिनम*, 7. *केलेन्थी प्यूबरूला*, 8. *बल्बोफिलम गुटूलेटम*, 9. *केलेन्थी सिल्वेटिका*, 10. *सिम्बीडियम इबरनम*, 11. *सिम्बीडियम टाइग्रीनम* 12. *सिम्बीडियम इरिथ्रीयम*

1. *एडिएन्टम कोनिसनम*, 2. *एडिएन्टम रेडिएनम*, 3. *एडिएन्टम वेलुस्टम*, 4. *एल्यूरिटोप्टेरिस डुबिया* 5. *साइथिया चाइनेन्सिस*, 6. *एसप्लिनियम चीलोसोरम*, 7. *डिपेरिया पेटरसैनी*, 8. *नेफ्रोलेपिस कॉर्डिफोलिया*, 9. *टेक्टेरिया कोडुनाटा*, 10. *लेप्टाचिलस इनसिग्नी*, 11. *लेपिसोरस मेहरी*

सिक्किम वानस्पतिक उद्यान में पर्णांगों की कुल 108 जातियाँ मिलती हैं, जिनमें से 25 जातियाँ यहाँ प्राकृतिक रूप में मिलती हैं, शेष 83 जातियों को उद्यान में पुर्नः स्थापित/स्थापित किया गया है।

पुनःस्थापित– सिक्किम वानस्पतिक उद्यान में पाये जाने वाली पर्णांग जातियों में से 83 जातियाँ, जिन्हें यहाँ पुनः स्थापित किया गया हैं, उनमें एडिएन्टेसी कुल की *एडिएन्टम केपिलस–वेनेरिस, एडिएन्टमवेनुस्टम,* एसप्लिनिऐसी कुल की *एसप्लिनियम क्रिनिकोल, एसप्लिनियम एन्सिफोर्म, एसप्लिनियम फिन्लेसोनिएनम, एसप्लिनियम लेसिनिएटम, एसप्लिनियम निडस, एसप्लिनियम नाइटिडम, एसप्लिनियम नॉर्मेली, एसप्लिनियम ऑब्स्क्युरम, एसप्लिनियम पेलुसिडम, एसप्लिनियम योसिनेगी, एसप्लिनियम चिलोसोरम,* सिलेजिनेसी कुल की *सिलेजिनेला ब्रूनी* तथा वुडसिएसी कुल की *एसिस्टोप्टेरिस टेन्युसेक्टा, एथाइरम डिस्टेन्स, एथाइरम ड्रेपेनोप्टेरम, एथाइरम फोलियोलोसम, एथाइरम वुडसिओइडिस, कोरनोप्टेरिस ओपाका, डिपेरिया जेपोनिका, डिप्लेजियम डियोडरलेनी, डिप्लेजियम डिलेटेटम, डिप्लेजियम एस्कुलेन्टम, डिप्लेजियम हिमालयैन्स, डिप्लेजियम कावाकामी, डिप्लेजियम लेटीफोलियम, डिप्लेजियम मेक्सिमम* एवं *डिप्लेजियम स्पेक्टेबाइल* जातियाँ प्रमुख हैं।

प्राकृतिक – उद्यान में कुल 25 जातियाँ यहाँ के पर्यावरणीय परिवेश में स्वतः प्राकृतिक रूप से उगती हैं जिनमें एडिएन्टेसी कुल की *एडिएन्टम कोन्सिनम, एडिएन्टम इनसिजम, एडिएन्टम फिलिपेन्स, एडिएन्टम रेडिएनम,* ड्रायोप्टेरिडेसी कुल की *टेक्टेरिया कोडुनाटा, पोलिस्टिकियम लेन्टम,* इक्वीसिटेसी कुल की *इक्वीसिटम डिफ्युजम,* हाइमेनोफाइलेसी कुल की *हाइमेनोफाइलम एक्जरटम,* टेरिडेसीकुल की *ल्युरिटोप्टेरिस एल्बोमार्गिनेटा, एल्युरिटोप्टेरिस फोरमोसाना, टेरिस बाइऑरिटा, टेरिस स्केब्रिरिजेन्स, टेरिस विटाटा, टेरिस वेलिचियाना,* सिलेजिनेसी कुल की *सिलेजिनेला मोनोस्पोरा* प्रमुख हैं ।

उपरोक्त वर्णित आलेख में सिक्किम के वानस्पतिक उद्यान में लगे पादपों को सूचीबद्ध किया गया तथा इनके पुष्पन–फलन के समय की जानकारी दी गई है। इसके द्वारा जिन पादपों को संरक्षित करना है उन पादपों के बीजों को प्राकृतिक क्षेत्रों से सर्वेक्षण के दौरान एकत्रित करके कार्यालय के वानस्पतिक उद्यान में अंकुरण द्वारा नई पौध तैयार कर संरक्षित किया जा सकता है। इन पादपों की पुष्पन–फलन की जानकारी एकत्रित करके जलवायु में होने वाले परिवर्तन का पादपों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है।

काटे वृक्ष, उजड़ते वन,
दे रहा प्रलय के घाव ।
कड़ी धूप है जलते पांव,
होते पेड़ तो मिलती छांव ।।

अरूणाचल प्रदेश के तवांग जिले की उच्च पर्वतीय आर्द्र भूमि और उसका संरक्षण

एच. एस. महापात्र
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

अरुणाचल प्रदेश के कुल 17 जिलों में से एक है तवांग, जो पूर्वी हिमालय के वृहत हिमालय क्षेत्र में अवस्थित है। यह राज्य का सबसे आकर्षक क्षेत्र है, जिसमें हिमालय की ऊँची–ऊँची पर्वत श्रृंखलाएं सम्मिलित हैं, जिनकी ऊँचाई समुद्रतल से 3500 मी. या उससे भी अधिक है। सुरम्य बर्फ से आच्छादित चोटियों वाले इस सुंदर स्थल को 'अदृश्य–स्वर्ग' जैसी उपाधि प्राप्त है। इस जिले की सीमा उत्तर में अंतरराष्ट्रीय सीमा पर चीन से एवं पश्चिमी और दक्षिणी सीमा पर भूटान के साथ मिलती है। इस क्षेत्र से तवांग–चू और न्यामजंग–चू अपनी सहायक नदियों के साथ बहते हुए भूटान में जाकर निकलती हैं।

तवांग के शीतोष्ण वन झाड़ीनुमा रोडोडेन्ड्रॉन (बुरांश) मिश्रित घास के मैदान तथा झीलों से समृद्ध हैं, जिनमें संगेस्टर झील, पीटीत्सो सेला झील, त्सोबर, चंदे सिक्लात्सो, चेम्किग्लासो झील प्रमुख है, जो समुद्रतल से 4000–5250 मी. की ऊंचाई पर स्थित पौधों को प्राकृत वास प्रदान करती हैं। ये समस्त झीलें पहाड़ियों से घिरी हैं, जो नीचे जल निकायों से मिलकर पानी और बर्फ की भिन्न–भिन्न मात्रा प्राप्त करती हैं। ये आर्द्रभूमि उल्लेखनीय प्राकृतवास और पादप घटकों का बहुत ही अद्वितीय दृश्य प्रदर्शित करती हैं। नागू–ला, बूम –ला और से–ला की ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी ये आर्द्रभूमियां औषधीय व वानस्पतिक आकर्षण वाले बहुवर्षीय, गहरी जड़ों वाली पादप जातियों को आश्रय प्रदान करती हैं। इस इलाके की पादप जातियों में सेवार से ढकी हुई जातियों सहित *बरबेरिस, रोजा, फैगोपाइरम, एनाफेलिस, पेडिक्यूलरिस, पोटेंटिला, बिस्टोरिया, पोलिगोनम, रियुमेक्स, मेकोनोपिस* आदि जातियां शामिल हैं । इन वनस्पतियों को सामान्यतः सुरा गाय व मवेशी गर्मी में चारे के रूप में प्रयोग में लाते हैं। नागु–ला, त्वांग शिखर व सेला शिखर वाले इलाकों से घिरी ऊंची तृण भूमियाँ 4350 मी. से 5250 मी. की ऊंचाई पर अवस्थित हैं। ये क्षेत्र अधिक आर्द्रता वाले होते हैं, इसलिए इनमें *प्रिमुला कोल्डेरियाना, रियुयम नोबिले* की संघचारी पट्टियां तथा *सैक्सीफ्रैगा, आर्टेमिसिया, लियोंटोपोडियम* व ठिगने रोडोडेंड्रॉन (बुरांश) की जातियां बहुतायत में मिलती हैं। जिले की विशिष्ट आर्द्रभूमि *स्वर्तिया, प्रिमुला, पेडिकुलेरिस, जेंटियाना, एकोनिटम, एलेट्रिस, बर्जिनिया, साइनेंथ सलोबाटस* व अन्य, *होटुन्निया कोर्डाटा, ओयेंथे जावानिका, पोलिगोनम नेपालेंसे, सैक्सीफ्रैगा* व *सीडम* की जातियों आदि को आश्रय प्रदान करती हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में आर्द्र भूमियों का विशिष्ट स्थान होता है, ये किसी भी क्षेत्र में पारितंत्र संतुलन को बनाए रखने के लिए अपरिहार्य हैं। तवांग जनपद समृद्ध और विविध उच्च पर्वतीय झीलों से सुशोभित है, इन आर्द्रभूमियों के उच्च पर्वतीय तृणभूमियों, पहाड़ी ढलानों व जलांचलों के पास

1. त्सोबर –।। झील का दृश्य 2. बर्फाच्छादित सेला झील का दृश्य, 3. त्सोबर–। झील, 4. त्सोबर–। झील ग्रीष्म काल में

रोचक व वानस्पतिक अभिरुचि वाली कुछ पादप जातियाँ जैसे *बैलेनोफोरा डाइया, बोश्नियाकिआ हिमालयाका* आदि कुछ जड़ मूल परजीवी व मृतजीवी जैसे *मोनोट्रॉपेस्ट्रम ह्यूमिले, रियूयम नोबिले, सौशुरिया आब्यूलेटा* आदि पाई जाती हैं। जिले की अद्वितीय आर्द्रभूमि वनस्पतियां जैविक व अजीवीय कारकों से लगातार दबाव में हैं। अनियोजित भूमि उपयोग के तरीकों जैसे शहरीकरण, सड़क, बांधों या जल विद्युत परियोजनाओं का निर्माण, पर्यटन, वनोन्मूलन, पशुओं के घास चरने व स्थानीय लोगों द्वारा वनस्पतियों का खाद्य के रूप में इस्तेमाल, वनाग्नि आदि इस पारितंत्र की तबाही के मूलकारण हैं। इससे न केवल इस इलाके की अलग–अलग वनस्पतियों की जातियों की उत्तरजीविता व संवृद्धि बल्कि संपूर्ण आर्द्रभूमि की पारिस्थितिकी भी बुरी तरह प्रभावित हो रही है। ये इलाके हाल ही में किए गए सड़क निर्माण, ईंधन संग्रह व स्थानीय लोगों द्वारा अपने मवेशियों ज्यादातर सुरागायों को घास चराने की वजह से बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। यह क्षेत्र भू–स्खलन के खतरे से भरा हुआ है तथा वर्षाकाल में यहाँ अत्यधिक मृदा अपरदन के साथ पारितंत्रीय हानि होती है। शीतकाल में वनस्पतियों की वृद्धि 4000 मी. की ऊंचाई पर होने वाले भारी हिमपात से बुरी तरह प्रभावित होती है। दीर्घकालिक संरक्षण रणनीति बनाने तथा स्थानीय जनजातियों के हितों में पारिस्थितिकी पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए तवांग जिले की आर्द्रभूमियों का अनन्य रूप से विस्तृत सर्वेक्षण करना अत्यावश्यक है। अरुणाचल प्रदेश में आठ वन्य जीव अभयारण्य, एक ऑर्किड अभयारण्य और दो राष्ट्रीय उद्यान हैं, लेकिन हैरानी की बात है कि उनमें से किसी में भी अधिक ऊंचे उच्च पर्वतीय क्षेत्र शामिल नहीं हैं, अतः ऐसे आकर्षक और नाजुक पारिस्थितिकीय क्षेत्रों की जैव विविधता का संरक्षण करने हेतु इस उच्च पर्वतीय क्षेत्र में अवस्थिति संरक्षण के उपाय के रूप में कुछ संरक्षित क्षेत्रों का विकास अत्यावश्यक है।

क्लोरेला का औषधीय उपयोग एवं स्वास्थ्यवर्धन में योगदान

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति में शैवाल की कुछ अनमोल जातियां पाई जाती हैं। प्राचीनकाल से मानव प्रायः मैदानी/तटीय पौधों का उपयोग औषधि के रुप में स्वास्थ्यवर्धन एवं रोगोपचार हेतु करता आया है। जिसका उल्लेख प्राचीन वेदों, ग्रन्थों एवं वैज्ञानिक शोध पत्रों में मिलता है । इसके अतिरिक्त पुरातनकाल से शैवालों का उपयोग भी मानव एवं जीव जंतु की जातियों के आहार के रुप में किया जाता है आज के युग में प्राकृतिक औषधीय शैवालों की उपयोगिता दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही है। शैवाल प्रायः झरनों, नदियों, नालों, तालाबों, कुओं, धान के खेतों, बर्फ, समुद्र, चट्टानों, मिट्टी, दीवारों, खंडहरों, पेड की छालों, आदि में पाये जाते हैं। मालदा जिले के जलाशयों एवं आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान के वृक्षों की छाल से लिये गये नमूनों का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ कि शैवाल की कुछ ऐसी जातियां विद्यमान हैं, जिनका स्वास्थ्यवर्धन में प्रमुख योगदान है। शैवालों के नमूने का अध्ययन कर पहचाना गया इनमें से प्रमुख है हरित शैवाल क्लोरेला। जो क्लोरोफाइसी कुल का सदस्य है। यह सकेन्द्रीय (यूकैरिओटिक), एक कोशकीय संरचना का शैवाल है जो प्रकाश संश्लेषित और उभयपोषी (मिक्सोट्रोपिक) होते हैं। क्लोरेला एक अत्यन्त ऊर्जावान जैव भार (बायोमास) का निर्माण करता है जो किसी भी अन्य पौधों की तुलना में अत्यधिक तीव्र गति से वृद्धि करता है। क्लोरेला में पुनरुत्पादन/जनन दर बहुत ज्यादा होती है, एक मात्र कोशिका 16 से 20 घंटें में विभाजित होकर 4 केन्द्रिय कोशिका का निर्माण करती है और फिर अगले 16 से 20 घंटे में फिर उसी प्रकार विभाजित होती है। इसलिए यह कहा जाता है कि क्लोरेला में जैव भार निर्माण करने की सबसे ज्यादा क्षमता होती है। क्लोरेला का उपयोग औषधीय क्षेत्र में प्रतिजैविक, प्रतिविषाणु, प्रतिजीवाणु, भैषज, औषधि निर्माण, पोषक तत्वों, विभिन्न विटामिन्स, प्रोटीन के रुप में और भयानक रोगों से बचने हेतु एवं उनसे मुक्ति पाने के लिए किया जाता है ।

क्लोरेला पहला ऐसा शैवाल है, जो हमारे शरीर को निरविष करने में सहायक होता है। इसमें सुरापान (एल्केहल) को यकृत से निष्कासित करने की क्षमता होती है और यह भारी धातुओं जैसे कैडमियम, मरकरी, इत्यादि कुछ पीडकनाशी, कीटनाशी और पॉलीक्लोरोबाइफिनाइल (पी.सी.बी.) को शरीर के ऊतक से निकालने की क्षमता होती है। इसमें पर्णहरित, विटामिन–ए. बी.1 बी.2, बी.6 व बी.12 प्रचुर मात्रा में होती है। क्लोरेला में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने, यकृत की क्रियाओं में वृद्धि करने, ठंड से बचाव के लिए प्रतिरक्षा को बढाने और विषाणु तथा अर्बुद (ट्यूमर) रोधक क्षमता होती है । सुरापान से संबंधित समस्याओं के निवारण में बहुत लाभकारी है वृद्धावस्था जनित एलजाइमर रोग में यदि रोगी को 6 ग्राम क्लोरेला 6 माह तक दिया जाये तो अधिकांश रोगी में या तो रोग के लक्षण में कमी आती है या रोग बढ़ने से रुक जाता है । क्लोरोला विभिन्न रोगों के उपचार एवं उनको कम करने में उपयोगी है ।

यह परिसंचारण में रक्ताल्पता को नियमित करता है। क्लोरेला का उपयोग कब्ज (मलावरोध) एवं अल्सर के उपचार के लिये भी किया जाता है । यह प्रतिरक्षण तंत्र की कमजोरी को ठीक करता है एवं यीस्ट एवं केनडिडा के संक्रमण को कम करने में सहायक होता है। यह निम्न शर्करा स्तर या अधो शर्करा स्तर को संतुलित करता है एवं उपापचयी क्रियाओं में प्रभावी होता है। क्लोरेला में पाये जाने वाली वसायें एवं वसीय अम्ल कम अणुभार/ घनत्व वाले रसायन होते हैं अतः क्लोरेला हृदय रोगियों एवं उच्च कोलेस्ट्राल से ग्रस्त लोगों के लिये बहुत उपयोगी है। ऐसा माना जाता है कि बीटा –कैरोटीन में सबसे उच्च कोटि का विटामिन–ए होता है, क्योंकि यह बहुत जल्दी ज्यादा सक्रिय पदार्थ के रुप में परिवर्तित हो जाता है। उपयोगिता के अनुसार आपका शरीर इसको विटामिन–ए के रुप में परिवर्तित कर देता है, यह क्लोरेला में बड़ी मात्रा में मिलता है। यदि आप अपने शरीर को निराविष (डीटोक्सोफाई) करना चाहते हैं और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को सुदृढ़ करना अथवा शक्तिशाली बनाना चाहते हैं तो क्लोरेला भोजन के संपूरक के रुप में नियमित प्रयोग किया जाना चाहिए । क्लोरेला एक संपूर्ण संतुलित एवं उच्च कोटि का आहार है क्योंकि इसमें आवश्यक अमीनो अम्लों से भरपूर प्रोटीन काफी प्रचुर मात्रा में होती है। इसके अतिरिक्त इसमें वसीय अम्ल, खनिज लवण, विटामिन्स, शर्करायें इत्यादि होती हैं। क्लोरेला की बहुआयामी उपयोगिता के आधार पर ही नासा (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) ने इसको भविष्य का भोजन माना है।

पादप जीवाश्म : राजमहल की पहाड़ी, झारखण्ड

आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पूर्व मध्य भारत में स्थित झारखण्ड का यह क्षेत्र वानस्पतिक दृष्टिकोण से अनूठा है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति वन संपदा, खनिज, जलाशय इत्यादि वनस्पति विज्ञानियों को अपनी ओर आकर्षित करती है। यहाँ पर 10 वन्य जीव अभयारण्य तथा एक राष्ट्रीय उद्यान है। राजमहल का क्षेत्र खास कर पादप जीवाश्म के लिए विख्यात है। यह झारखण्ड प्रदेश के उत्तर पूर्व दिशा में सघन वन क्षेत्रों के मध्य में अवस्थित है। राजमहल पहाड़ी जो झारखंड राज्य के चार जिलों साहेबगंज, गोड्डा, पाकुड़ तथा दुमका में विस्तृत है, इस इलाके में जीवाश्म प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जो लगभग 1500–2000 लाख वर्ष पुराने जुरासिक तथा निम्न क्रीटेसियस काल के हैं। यह क्षेत्र समुद्री सतह से 200–300 मीटर की ऊँचाई में करीब 2600 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है । 25^0 उत्तर एवं 87^0 पूरब में स्थित राजमहल पहाड़ी की उत्पत्ति जुरासिक समय में फटे ज्वालामुखीय गतिविधियों की वजह से हुई है।

राजमहल पहाड़ी का नक्शा

पृथ्वी पर किसी समय जीवित रहने वाले अति प्राचीन जीवों के परिरक्षित अवशेषों या उनके द्वारा चट्टानों में छोड़ी गई छापों को जो पृथ्वी की सतहों या चट्टानों की परतों में सुरक्षित पाये जाते है, जीवाश्म कहलाते हैं एवं इनके अध्ययन को जीवाश्म विज्ञान या पैलेन्टोलॉजी कहते है। इनके अध्ययन से न केवल पृथ्वी के उद्भव एवं इतिहास बल्कि प्राणी तथा पादपों की जैव–विकास का अनुरेखण किया जा सकता है।

प्राकृतिक संपदा से समृद्ध राजमहल के इस क्षेत्र में पहुँचने के लिये सर्वप्रथम साहेबगंज पहुँचना होता है जो झारखंड की राजधानी रांची से लगभग 32 कि.मी. की दूर मांउरो प्रखंड में अवस्थित है। यहाँ तक यातायात की जनसुविधा सामान्यतः उपलब्ध नहीं है अतः स्थानीय निवासियों का निर्देशन तथा सहायता लेनी आवश्यक है। जीवाश्म उद्यान के अत्यन्त निकट "फासिल शून्य कि.मी." लिखित मील का पत्थर इस स्थान को सूचित करता है। राजमहल पहाड़ी में पाये जाने वाले जीवाश्मों की विविधता तथा प्रकृति पर प्रसिद्ध पुरातत्वविद् वैज्ञानिक डॉ बीरबल साहनी ने अमूल्य योगदान दिया है।

राजमहल पहाड़ी में एक विशेष कुल के पादप जीवाश्म पाये जाते हैं, जो बाद में न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया महाद्वीप से भी संग्रहित किये गये हैं। सर्वप्रथम ओल्डहम और मोनिस ने 1863 में इस क्षेत्र में पाये जाने वाले पादप जीवाश्म के बारे में जानकारी दी थी, जिनका कहना था कि जीवाश्म पर्णांग एवं अनावृतबीजी समूह के हैं। 1930 के शुरूआत में बीरबल साहनी द्वारा इस क्षेत्र के पादप जीवाश्म पर व्यापक अध्ययन के बाद देश के विभिन्न प्रांतों से जीवाश्म वैज्ञानिकों का ध्यान राजमहल पहाड़ी की ओर आकर्षित हुआ। उनके द्वारा प्रकाशित विभिन्न शोध पत्रों से इस इलाके से अन्य

1

2

1. स्थानिय लोगों की मदद से जीवाश्म संग्रह 2. जीवाश्म उद्यान

1–4. प्रकृति में उपलब्ध पादप जीवाश्म

समुदाय के पादपों जैसे शैवाल, हरिदोद्भिद् तथा पुष्पी पौधों के जीवाश्म के बारे में जानकारी मिली। परमियन समय (2990 – 2510 लाख वर्ष पहले) के कुछ पौधे जैसे– *ग्लोसोप्टेरिस साइजोन्यूरा, वर्टीब्रेरिया, नागेरेथियोप्सीस, गैंगमोप्टेरिस, पेन्टोजायलॉन, विलियमसोनिया, इक्वीजीटाइटिस, राजमहलेनसिस, बकलैंडिया इंडिया, डिकसोनिया रालमहलेनसिस, डैनियोप्सीस राजमहलेनसिस, साइकेडिओडिया, सिलैजिनेलिटिस, टाईलोफालम, टेनियोप्टेरिस, डिक्टिओजेमाइटिस , टेरोफाइलम* और *क्लैडोफ्लेबिस* राजमहल पहाड़ी तथा आस–पास के क्षेत्र में पाये गये है। इस इलाके के जीवाश्म सिर्फ पादप तक ही सीमित नहीं है अपितु यहाँ से परागकण एवं अनाजों के भी जीवाश्म पाये गये हैं।

पुरावनस्पति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद इस क्षेत्र में अनुरक्षण में कमी है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा यह इलाका 'भूवैज्ञानिक विरासत' स्थल' घोषित किया गया है। बुद्धिजीवियों और पर्यावरण प्रेमी अब प्रशासन की लापरवाही, अवैध खनन तथा पत्थर माफिया की अवैध गतिविधियों से इस धरोहर पर संकट की बात कहते हैं। इस धरोहर को संरक्षित करने के प्रयासों को जमीनी स्तर पर क्रियान्यवन करना होगा अन्यथा दुनिया भर के जीवाश्म तथा वनस्पति वैज्ञानिकों के लिये प्रयोगशाला रूपी यह स्थल सुरक्षा और संरक्षण के बिना नष्ट हो सकता है।

वृक्ष धरा का आभूषण है, करता दूर प्रदूषण है।

ब्राह्मी : आयुर्वेद की एक सुविख्यात एवं संदिग्ध वनस्पति

अम्बर श्रीवास्तव, बृजेश कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आयुर्वेद की मेध्य व रसायन गुणों वाली औषधियों में ब्राह्मी का विशेष स्थान है। चरक व सुश्रुत ने इस औषधि के गुणों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है एवं इसके गुणों व स्वरूप को संस्कृत के सांकेतिक शब्दों में भी वर्णित किया है। अन्य निघण्टुकारों (प्राचीन वैद्यों) ने भी ब्राह्मी के गुण, स्वरूप व उपयोग से सम्बंधित विस्तृत वर्णन दिए हैं, किन्तु इसे आयुर्वेद का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि इतनी बहुउपयोगी व दिव्य वनौषधि का सही वानस्पतिक निर्धारण आज भी संदेहास्पद है। भारत के विभिन्न प्रांतों में ब्राह्मी के नाम से भिन्न–भिन्न औषधियाँ प्रयोग की जा रही हैं, जिनमें से कई तो ब्राह्मी के शास्त्रोक्त वर्णनानुसार उपयुक्त ही नहीं हैं। इसका मुख्य कारण वर्तमान समय में संस्कृत की क्लिष्ट सांकेतिक भाषा को समझने में अल्पज्ञता के साथ–साथ वर्तमान वैद्यों में वनस्पतियों से सम्बन्धी ज्ञान का अभाव भी है। चरक, सुश्रुत सहित आयुर्वेद के विभिन्न शास्त्रों में जिस ब्राह्मी का वर्णन मिलता है, वह कोई दुर्लभ वनस्पति न होकर सर्वसामान्य को सुलभ हो सकने वाली वनस्पति प्रतीत होती है। ब्राह्मी का वर्णन न केवल आयुर्वेद के ग्रंथों तक ही सीमित है, अपितु ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद सहित अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी कई स्थानों पर मिलता है। ब्राह्मी को एक पवित्र व सात्विक गुण वाली वनौषधि माना गया है, यह बुद्धि को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के योग्य बनाने में सक्षम है इसलिए इसको ब्राह्मी कहा जाता है। ब्राह्मी के ही समान गुणों वाली एक अन्य वनस्पति का भी आयुर्वेद में उल्लेख मिलता है, जिसको शास्त्रों में मण्डूकपर्णी या ब्रह्ममांडुकी के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार मण्डूकपर्णी को ब्राह्मी का उत्तम विकल्प माना गया है तथा कई स्थानों पर ब्राह्मी के अभाव में मण्डूकपर्णी का प्रयोग करने के भी संकेत मिलते हैं, इसके साथ ही दोनों का पादप–स्वरुप भी लगभग एक जैसा ही बताया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के भेद में अल्पज्ञता के कारण कई स्थानों पर मण्डूकपर्णी को ही ब्राह्मी मानकर प्रयोग किया जाने लगा है तथा कई तो इसे ही असली ब्राह्मी समझ बैठे हैं। इसी भ्रम के चलते कई विद्वानों नें ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी को एक दूसरे का पर्याय मान लिया, लेकिन आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथों

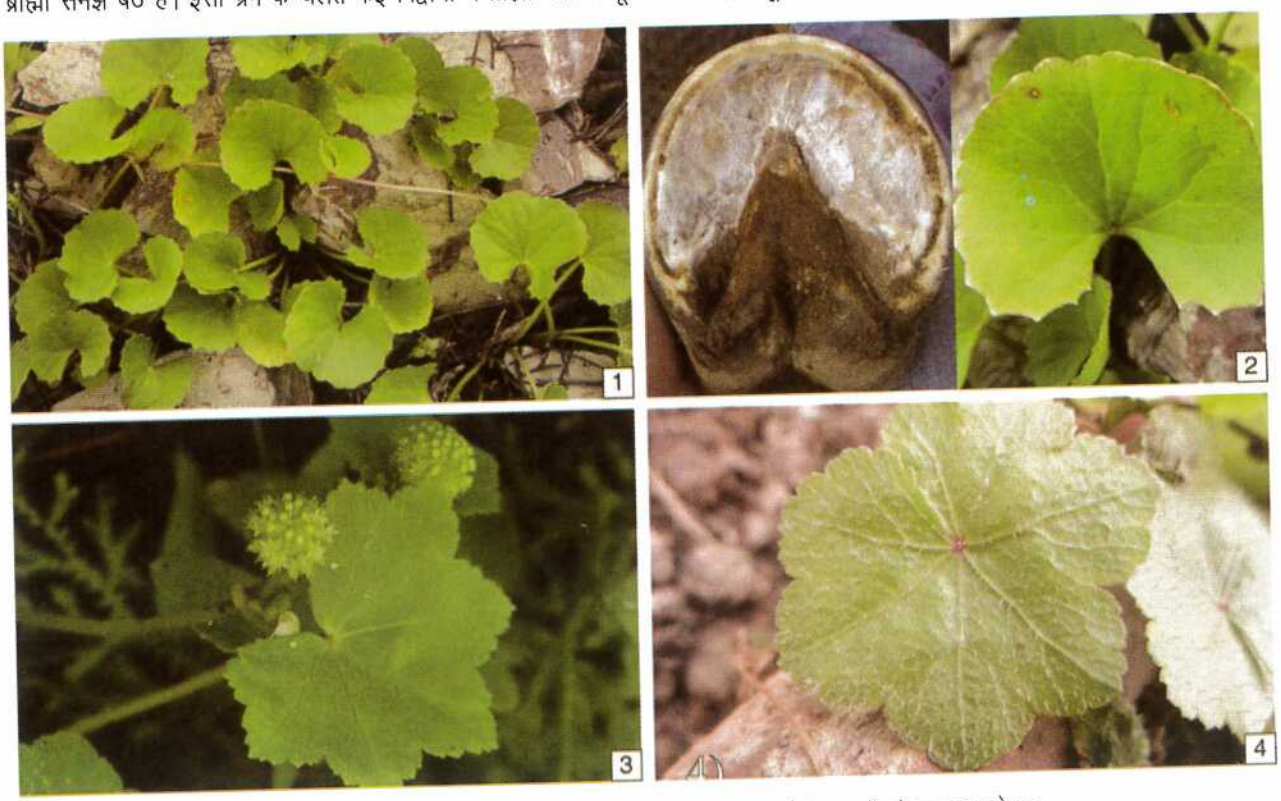

1. *सेंटेला एशियाटिका* (मण्डूक पर्णी) का पादप–स्वरुप 2. अश्वखुर (संस्कृतः मंडूक) सदृश इसके पत्र
3. *हाइड्रोकोटाइल जवानिका* (खड़–ब्राह्मी, पहाड़ी ब्राह्मी) का पादप–स्वरुप व 4. इसके पत्र

जैसे चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं कश्यप संहिता में ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी को स्पष्ट रूप से दो भिन्न वनस्पतियों के रूप में वर्णित किया गया है तथा चरक ने ब्राह्मी की गणना ऐन्द्ररसायन व मण्डूकपर्णी की गणना मेध्यरसायन में करके दोनों में भेद को स्पष्ट कर दिया है। इतना ही नहीं कई स्थानों पर तो अन्य बुद्धिवर्धक वनस्पतियों को भी ब्राह्मी माना जाने लगा है। इसके साथ ही अभी हाल ही में एक अन्य वनस्पति को ब्राह्मी सिद्ध करने में वर्तमान वैज्ञानिकों व वैद्यों ने कोई कसर नहीं छोड़ी जिसका वानस्पतिक नाम *बैकोपा मोनिएराई* है, इसी वनस्पति को 'निघन्टु आदर्श' में "तिक्त लोणिका" कहकर सम्बोधित किया गया है जो कि इसके लोणिका (*पोर्टुलाका ओलेरेसिआ*) जैसे स्वरुप व तिक्त स्वाद को देखते हुए उपयुक्त नाम प्रतीत होता है। ब्राह्मी का वास्तविक निर्धारण करने के प्रयास वर्तमान युग के कई विद्वानों ने किये हैं पर कहीं संस्कृत भाषा की अल्पज्ञता के कारण तो कहीं वनस्पति विषयक ज्ञान की कमी के कारण आज भी ब्राह्मी एक संदिग्ध वनस्पति बनकर रह गयी है। हालाँकि औषधि निर्माण में ब्राह्मी की पूर्ति विभिन्न भैषज उद्योग अपनी सुविधा के अनुसार भिन्न–भिन्न वनस्पतियों से कर रहे हैं जिनमें मुख्य रूप से पाँच प्रमुख वनस्पतियाँ उपयोग की जा रही हैं जिनके वानस्पतिक नाम *जिन्को बाइलोबा, सेंटेला एशियाटिका, हाइड्रोकोटाइल जवानिका, हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपिओइडिस* व *बैकोपा मोनिएराई* हैं।

1. *जिन्को बाइलोबा* (जिन्कोऐसी) – इसे हिमाचल में ब्राह्मी व ब्रह्मकुमारी के नाम से जाना जाता है तथा इसके मेध्य (बुद्धिवर्धक) गुणों पर भी कई शोधकार्य हुए हैं। इस वृक्ष को अंग्रेजी भाषा में 'मेडन हेयर ट्री' के नाम से जाना जाता है तथा हिंदी में 'हंसराज वृक्ष' नाम दिया गया है जो इसके पत्तों कि संरचना 'हंसराज' नामक पर्णांग पादप कुल की वनौषधि *'एडिएन्टम'* से समानता के कारण दिया गया है। *जिन्को बाइलोबा* के पर्णपाती वृक्ष हिमालय क्षेत्र के वानस्पतिक उद्यानों आदि में देखे जा सकते हैं, जो शीत ऋतु में पतझड़ से पूर्व स्वर्णिम आभा से युक्त दिखाई पड़ते हैं। इसके पत्तों में व्याप्त औषधीय गुणों के कारण ही वर्तमान समय में भैषज उद्योगों में इसका बृहत् रूप से उपयोग किया जाने लगा है। इसका उपयोग प्रारंभिक रूप से तिब्बती वैद्यों ने प्रारंभ किया था, जो वर्तमान समय में मानसिक रोगों के साथ उत्तम मेधावर्धक औषधि के रूप में किया जाने लगा है तथा होम्योपैथी में इससे निर्मित औषधि वयोत्तर स्मृति विलोपन (ओवरएज मेमोरी लॉस) में बहुत लाभकारी सिद्ध हुयी है। वानस्पतिक जगत में यह वृक्ष "जीवित जीवाश्म वृक्ष" (लिविंग फॉसिल ट्री) के रूप में भी प्रसिद्ध है।

2. *सेंटेला एशियाटिका* (ऐपिएसी)– यह वनस्पति भारत में सर्वत्र नमीयुक्त भूमि में नदियों व जलाशयों के पास सामान्य रूप से उगती है तथा उद्यानों व नमीयुक्त भूमि पर भी स्वयं खरपतवार के साथ उग जाती है। इसकी लता भूमि पर फैलने वाली होती है, जिसके पर्वों (नोड्स) से जड़ें निकलती हैं तथा पत्ते वृक्काकार, गोल एवं फलक दन्तुर धार वाले होते हैं। अधिकांशतः भारत में लोग इसी को ब्राह्मी के नाम से जानते व उपयोग करते हैं। इसके पत्तों सहित पंचांग का औषधि रूप में प्रयोग होता है, गुण व स्वरुप की दृष्टि से यह शास्त्रोक्त मण्डूकपर्णी जैसी प्रतीत होती है तथा कई स्थानों पर इस नाम से जानी भी जाती है। इस पर किये गए प्रयोगों के आधार पर इसके मेध्य, रसायन, कुष्ठहर तथा रक्तशोधक गुणों पर प्रकाश डाला गया है। दक्षिण व पूर्वोत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में इसका उपयोग चटनी व साग के रूप में किया जाता है।

3. *हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपियोइडिस* (ऐपिएसी) – यह वनस्पति भी *सेंटेला एशियाटिका* की तरह ही नमीयुक्त भूमि पर नदियों व जलाशयों के आसपास व बगीचों में स्वयंजात उगी हुयी मिल जाती है, पर इसके पत्ते मण्डूकपर्णी की अपेक्षा छोटे, चिकने व चमकदार होते हैं। हरिद्वार में कई साधु–महात्मा व स्थानीय लोग इसका प्रयोग ब्राह्मी के रूप में करते हैं तथा इसी को असली ब्राह्मी के रूप में मान्यता देते हैं।

4. *हाइड्रोकोटाइल जवानिका* (ऐपिएसी) – अपने स्वरुप की दृष्टि से उपर्युक्त *सेंटेला* व *हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपियोइडिस* से मेल खाती है किन्तु यह हिमालय के ऊंचाई वाले शीत स्थानों में पायी जाती है तथा अधिक रोमिल होती है। इसको स्थानीय लोग खड़–ब्राह्मी या पहाड़ी ब्राह्मी के नाम से उपयोग करते हैं। आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति हिमालय क्षेत्र में होने का संकेत मिलने से इसके असली ब्राह्मी होने की सम्भावना है।

5. *बैकोपा मोनिएराई* (स्क्रोफुलेरिएसी) – यह नमीयुक्त, जलमग्न तथा दलदली भूमि में पायी जाती है। इसके पत्ते मांसल, अवृत तथा लंबवत गोलाकार होते हैं, जो स्वाद में अत्यंत कड़वे होते हैं। इसी कारण इसको स्थानीय लोग 'जलनीम' के नाम से जानते हैं। निघण्टु आदर्श में इसके लोणिका (*पोर्टुलाका ओलेरेसिआ*) जैसे स्वरुप के कारण इसको 'तिक्त लोणिका' का नाम दिया गया है। इसके पुष्प हल्के गुलाबी, जामुनी या श्वेतवर्णी होते हैं। औषधीय दृष्टि से इसमें शास्त्रोक्त ब्राह्मी के कुछ गुण पाये जाते हैं पर कुछ अन्य गुणों कीदृष्टि में यह विपरीत प्रभाव रखती है।

उपरोक्त सभी वनस्पतियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ब्राह्मी के रूप में प्रयोग की जा रही हैं तथा न्यूनाधिक शास्त्रोक्त ब्राह्मी के गुणों से मेल खाने के कारण इनमें से असली ब्राह्मी की पहचान करना विकट समस्या बन चुकी है जिस पर समय समय पर आयुर्वेद मनीषियों व वैज्ञानिकों ने

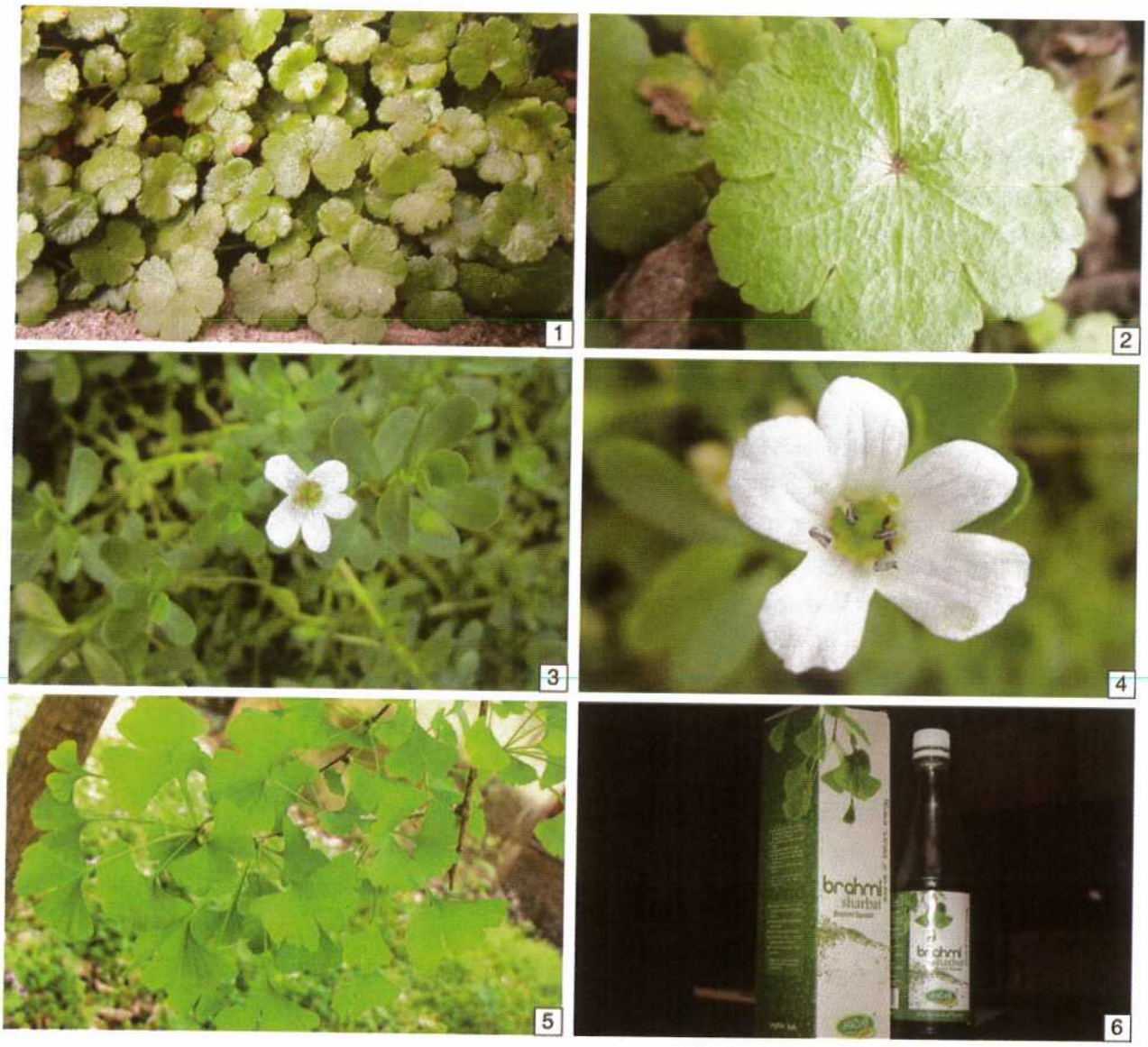

1. *हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपिओइडिस* (हरिद्वारी ब्राह्मी) का पादप–स्वरुप व 2. इसके पत्र 3. *बैकोपा मोनिएराई* (जलनीम, तिक्त लोणिका) का पादप–स्वरुप व 4. इसके पुष्प 5. *जिंको बाइलोबा* (ब्रह्मकुमारी, हंसराज वृक्ष) का पादप–स्वरुप 6. इसके पत्तों से बना शर्बत

विभिन्न लेख व शोधपत्र भी लिखे हैं। वर्तमान समय में अधिकांश वैज्ञानिक व आयुर्वेद विशेषज्ञ *बैकोपा मोनिएराई* को ही असली ब्राह्मी मानने लगे हैं तथा *सेंटेला एशियाटिका* को मण्डूकपर्णी मान लिया गया है।

ब्राह्मी को आयुर्वेद में वर्णित गुडूच्यादि वर्ग व शाकवर्ग की वनस्पति माना है तथा ब्राह्मी के स्वरुप का वर्णन फैलने वाली लता के रूप में किया गया है, इस दृष्टि से यह स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि *जिन्को बाइलोबा* असली ब्राह्मी नहीं है। आयुर्वेदिक ग्रंथों व संहिताओं के आधार पर देखा जाये तो ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनों समान गुण व स्वरुपों वाली दो भिन्न वनस्पतियाँ प्रतीत होती हैं संभवतः यही कारण रहा होगा कि मण्डूकपर्णी को लोग ब्राह्मी के स्थान पर उपयोग करने लगे व धीरे–धीरे इसी को असली ब्राह्मी मान लिया गया। मण्डूकपर्णी शब्द का अर्थ कई विद्वानों ने मेंढक जैसे पत्तों से लिया है पर वास्तव में संस्कृत में मण्डूक शब्द का एक अर्थ अश्वखुर (घोड़े के खुर) से भी लिया गया है तथा *सेंटेला एशियाटिका* की पत्तियां इससे अधिक मेल खाती हैं न कि मेंढक के आकार से। इससे यह सिद्ध होता है कि *सेंटेला एशियाटिका* वास्तव में मण्डूकपर्णी है न कि ब्राह्मी। आयुर्वेद शास्त्रों व विद्वानो के अनुसार मण्डूकपर्णी की क्रिया रक्त व त्वचा पर अधिक होती है और *सेंटेला एशियाटिका* पर किये प्रयोगों से यह बात सिद्ध भी होती है। वर्तमान समय में जिस *बैकोपा मोनिएराई* को अधिकांश लोग ब्राह्मी मान रहे हैं, उसका प्रचार मुख्य

रूप से बंगाल के वैद्यों (कविराजों) द्वारा किया गया है, इसको बंगाल में 'बाम' के नाम से जाना जाता था तथा एक मेध्य औषधि के रूप में प्रयोग भी किया जाता है। इसी 'बाम' *(बैकोपा मोनिएराई)* को कुछ लोगों ने ब्राह्मी का अपभ्रंश मान लिया तथा इसी को असली ब्राह्मी के नाम से प्रचारित कर दिया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि *बैकोपा मोनिएराई* में एक विषाक्त द्रव्य 'ब्राहमीन' पाया जाता है जो अत्यंत हानिकारक प्रभाव दर्शाता है तथा गर्भवती स्त्री के लिए हानिकारक है, इतना ही नहीं इस पौधे की अधिक मात्रा लेने से दस्त होने लगते हैं। किन्तु आयुर्वेद में जिस ब्राह्मी का वर्णन है वह हानिकारक प्रभाव न दिखाने वाली निरापद वनस्पति है तथा गर्भवती स्त्री के लिए भी उसके प्रयोग का वर्णन आयुर्वेद व यजुर्वेद में मिलता है (यजुर्वेद,अध्याय २० मंत्र ५६)। आयुर्वेद में ब्राह्मी को रसायन गुण वाली वनस्पति माना गया है, जो गुण जलनीम *(बैकोपा मोनिएराई)* में नहीं है। ब्राह्मी के विषय में एक प्राचीन शास्त्रीय वृत्तांत भी उल्लेखनीय है, जिसमें भारद्वाज आदि ऋषियों के आग्रह पर इंद्र ने इस दिव्य वनस्पति को अन्य वनस्पतियों के साथ स्वर्ग से हिमालय पर उतारा था(चरक संहिता, चिकित्सास्थान १.३.६), इससे यह संकेत मिलता है कि ब्राह्मी का धरती पर मूल उत्पत्ति स्थान हिमालय क्षेत्र रहा है जबकि *बैकोपा मोनिएराई* हिमालय क्षेत्र में मिलने की अपेक्षा मैदानी व तराई क्षेत्रों में पायी जाती है। सिर्फ रासायनिक संगठन के आधार पर हम इसको ब्राह्मी का चोगा नहीं पहना सकते, क्यूंकि ऐसी कई वनस्पतियां हैं जो तीव्र मेध्य गुणों से संपन्न हैं पर फिर भी हम उनको ब्राह्मी नहीं मान लेते।*बैकोपा मोनिएराई* के लिए उचित नाम जलनीम व तिक्त लोणिका ही लगता है न कि ब्राह्मी।

अब बाकी बची दो वनस्पतियाँ *हाइड्रोकोटाइल जवानिका* व *हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपिओइडिस* में से किसी एक के ब्राह्मी होने की सम्भावना की जा सकती है। ये दोनों ही स्वरुप की दृष्टि से मण्डूकपर्णी जैसी पर पत्तियों की दृष्टि से थोड़ी भिन्न होने पर भी बहुत कुछ एक जैसी प्रतीत होती हैं, चूँकि आयुर्वेदिक शास्त्रों में ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनों को स्वरूप व गुणों में समान माना गया है, इसलिए इन दोनों वनस्पतियों में से कोई एक ब्राह्मी हो सकती है। *हाइड्रोकोटाइल* वर्ग की उपरोक्त दोनों ही वनस्पतियाँ हिमालय क्षेत्र में पायी जाती हैं तथा भारत की कई आदिवासी जनजातियाँ, साधु–महात्मा व पुराने अनुभवी वैद्य इन दोनों को ब्रह्माणी, ब्राह्मणी या ब्राह्मी के नाम से जानते रहे हैं व उपयोग भी करते रहे हैं, इसके साथ ही इन दोनों में किसी प्रकार का कोई विषाक्त द्रव्यभी नहीं पाया जाता है। पत्तियों व पादप स्वरुप की दृष्टि से भी ये दोनों वनस्पतियाँ लगभग एक समान ही लगती हैं तथा इन दोनों में स्पष्ट अंतर न कर पाने के कारण दोनों ही वनस्पतियों का उपयोग स्थानीय लोग ब्राह्मी के नाम से करते आ रहे हैं। *हाइड्रोकोटाइल सिबथोरपिओइडिस* को हरिद्वार में असली ब्राह्मी के नाम से जाना जाता है तथा यहाँ के साधु–संत आध्यात्मिक साधना के लिए प्रायः इसी को ब्राह्मी के रूप में उपयोग करते हैं। हिमालय क्षेत्र में ब्राह्मी की उत्पत्ति सम्बंधित वर्णन से *हाइड्रोकोटाइल जवानिका* के असली ब्राह्मी होने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है, इस कारण इन दोनों वनस्पतियों पर तुलनात्मक व प्रायोगिक शोधकार्य करने की आवश्यकता है।

ब्राह्मी के समान ही आयुर्वेद ग्रंथों में वर्णित लगभग 70 प्रतिशत वनस्पतियों का आज तक सही निर्धारण नहीं हो सका है। इतना ही नहीं वर्तमान समय में कई विदेशी पादपों को भारतीय औषधियों के नाम से उपयोग किया जा रहा है जिस कारण आयुर्वेदिक औषधियों की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।सिर्फ आयुर्वेद ही नहीं बल्कि भारतीय ज्योतिष व तंत्र शास्त्रों में भी वनस्पतियों से सम्बंधित कई प्रयोगों का उल्लेख मिलता है तथा ये प्रयोग तभी सफल हो सकेंगे जब प्रयोग की जाने वाली वनस्पति की पहचान सुनिश्चित हो। इसलिए यह आवश्यक है कि भारत की अमूल्य धरोहर व आयुर्वेद का प्राण स्वरुप इन वनस्पतियों की सही पहचान करने के लिए शास्त्रोक्त लक्षणों व गुणों को विज्ञान की कसौटी पर परखा जाये, जिससे इन औषधियों के दिव्य गुणों से पूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सके।

शुद्ध खाद्यान्न, सादा जीवन,
स्वच्छ वातावरण, लम्बा जीवन ।
सुन्दर विचार, आत्मा की पुकार,
यही है खुशहाल भारत की पुकार ।।

हल्दी के विभिन्न रूप एवं उपयोग

अम्बर श्रीवास्तव, पुष्पेश जोशी, संजय उनियाल एवं देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

दैनिक जीवन में विविध रूपों में उपयोग की जाने वाली हल्दी या हरिद्रा से भला कौन अपरिचित होगा? जिंजिबरेसी कुल की इस वनस्पति के पत्ते व स्वरूप देखने में कदली (केले) सदृश पर उससे छोटा होते हैं तथा सम्पूर्ण भाग में भीनी–भीनी सी सुगंध व्याप्त रहती है। विश्वभर में हल्दी की रोपित व वन्य रूप की लगभग 40 जातियाँ पायी जाती है, जिनका उपयोग विभिन्न स्थानों पर विविध रूपों में किया जाता है। भोजन से लेकर औषधि तक तथा धार्मिक अनुष्ठानों से लेकर सगंध पादप उद्योग तक इसका विविध रूपों में उपयोग किया जाता है। वैसे देखा जाये तो हल्दी का संपूर्ण पौधा किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता है । किन्तु मुख्य रूप से इसके भूमिगत कन्दों का विशेष महत्व है। इसके पत्तों से आसवन विधि द्वारा प्राप्त तेल का उपयोग जोड़ों के दर्द, मोच, गठिया, सर्दी–जुकाम आदि रोगों में करने के साथ सगंध पादप उद्योग में भी किया जाता है। भारत में पायी जाने वाली *कूर्कुमा* वर्ग की सभी जातियों को भिन्न–भिन्न प्रकार की हल्दी के नाम से जाना जाता है तथा जाति के अनुसार इनका प्रयोग भी विविध रूपों में किया होता है। *कूर्कुमा* की अधिकांश जातियां मुख्य रूप से दक्षिण भारत एवं पूर्वोत्तर भारत में वन्य रूप से पायी जाती हैं किन्तु अन्य क्षेत्रों में भी यह रोपित अथवा वन्य रूप में मिल जाती है। मुख्य रूप से हल्दी की निम्नवर्णित 6 जातियाँ अधिक उपयोग में ली जाती हैं तथापि इसके अन्य भेद भी स्थानीय लोगों द्वारा विविध रूप से प्रयोग किये जाते हैं। आयुर्वेद ग्रंथों के अनुसार हल्दी की सभी जातियाँ औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तथा इनमे से दो जातियों *कूर्कुमा केसिआ* व *कूर्कुमा लॉन्गा* का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों में भी होता है।

1. *कूर्कुमा अमाडा,* प्रचलित नाम :आम्र हरिद्रा, आम हल्दी, आमा हल्दी; अंग्रेजी नामः मैंगो जिंजर

उपयोग – इस जाति के प्रकन्दों में कच्चे आम जैसी गंध आती है इसलिए इसको आम हल्दी या आम्र हरिद्रा कहते हैं। इस हल्दी का उपयोग मुख्य रूप से अचार, चटनी व भोजन में विशेष स्वाद लाने के लिए किया जाता है। आयुर्वेद के अनुसार यह वातनाशक, पाचक और शीतल गुणों से युक्त है। इसका उपयोग विशेष रूप से अंदरुनी चोट और मोच आदि में किया जाता है। कुछ स्थानों पर इसका उपयोग हल्दी के स्थान पर भी किया जाता है। बंगाल में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है। अन्य क्षेत्रों में इसके सूखे कन्द पंसारियों के यहाँ मिलते हैं। आमा हल्दी का मुख्य रूप से औषधि के रूप में उपयोग होता है तथा यह साधारण हल्दी की तरह भोजन में उपयोग नहीं की जाती अपितु चोट–मोच लगने, उदर विकार, कफ–खांसी आदि में उपयोग की जाती है।

2. *कूर्कुमा अंगस्टिफोलिआ,* प्रचलित नामः तवक्षीर, तीखुर; अंग्रेजी नामः ईस्ट इंडियन अरारोट

उपयोग– इस जाति का उपयोग मुख्य रूप से मांड (स्टार्च) निकालने के लिए किया जाता है। इसके कंदों से प्राप्त स्टार्च का उपयोग मुख्य रूप से अरारोट के स्थान पर किया जाता है इसलिए इसको "पूर्वीय भारत का अरारोट" भी कहा जाता है। इससे प्राप्त मांड (स्टार्च) बच्चों व रोगियों को हलवे के रूप में दिया जाता है जो कि पचने में हल्का व पौष्टिक होता है।

3. *कूर्कुमा एरोमैटिका,* प्रचलित नामः वन हरिद्रा, वन हल्दी, जंगली हल्दी; अंग्रेजी नामः वाइल्ड/एरोमेटिक टरमेरिक

उपयोग – इस जाति का उपयोग साधारण हल्दी में मिलावट के लिए अथवा उसके स्थान पर प्रयोग के लिए किया जाता है। वन हल्दी का मुख्य रूप से औषधि में ही उपयोग होता है पर कहीं–कहीं स्थानीय लोग इसका उपयोग भोजन में भी करते हैं। यह जाति सम्पूर्ण भारत में वन्य रूप में कई स्थानों पर पायी जाती है। इसके ताजे प्रकन्दों में कपूर जैसी गंध आने के कारण दक्षिण भारत में इसको 'कस्तूरी मंजल' के नाम से जाना जाता है। कभी–कभी इसका उपयोग साधारण हल्दी (*कूर्कुमा लॉन्गा*) अथवा आमा हल्दी (*कूर्कुमा अमाडा*) के स्थान पर भी किया जाता है तथा चोट–मोच, आदि में औषधि के रूप में ही उपयोग की जाती है। आयुर्वेद के अनुसार वन हरिद्रा कुष्ठ व वातरक्त में लाभदायक है।

4. *कूर्कुमा केसिआ,* प्रचलित नामः नरकचूर, कृष्ण हरिद्रा, काली हल्दी; अंग्रेजी नामः ब्लैक टरमेरिक, ब्लैक जेडोरी

उपयोग– काली हल्दी उत्तर–पूर्व व मध्य भारत में पायी जाने वाली हल्दी की एक दुर्लभ जाति है। इसका ताजा कन्द अंदर से नीलवर्णी होता है जो सूखने पर काला पड़ जाता है, इसी कारण इसको काली हल्दी कहते हैं। हल्दी की अन्य जातियों की तरह काली हल्दी का उपयोग भी औषधि की

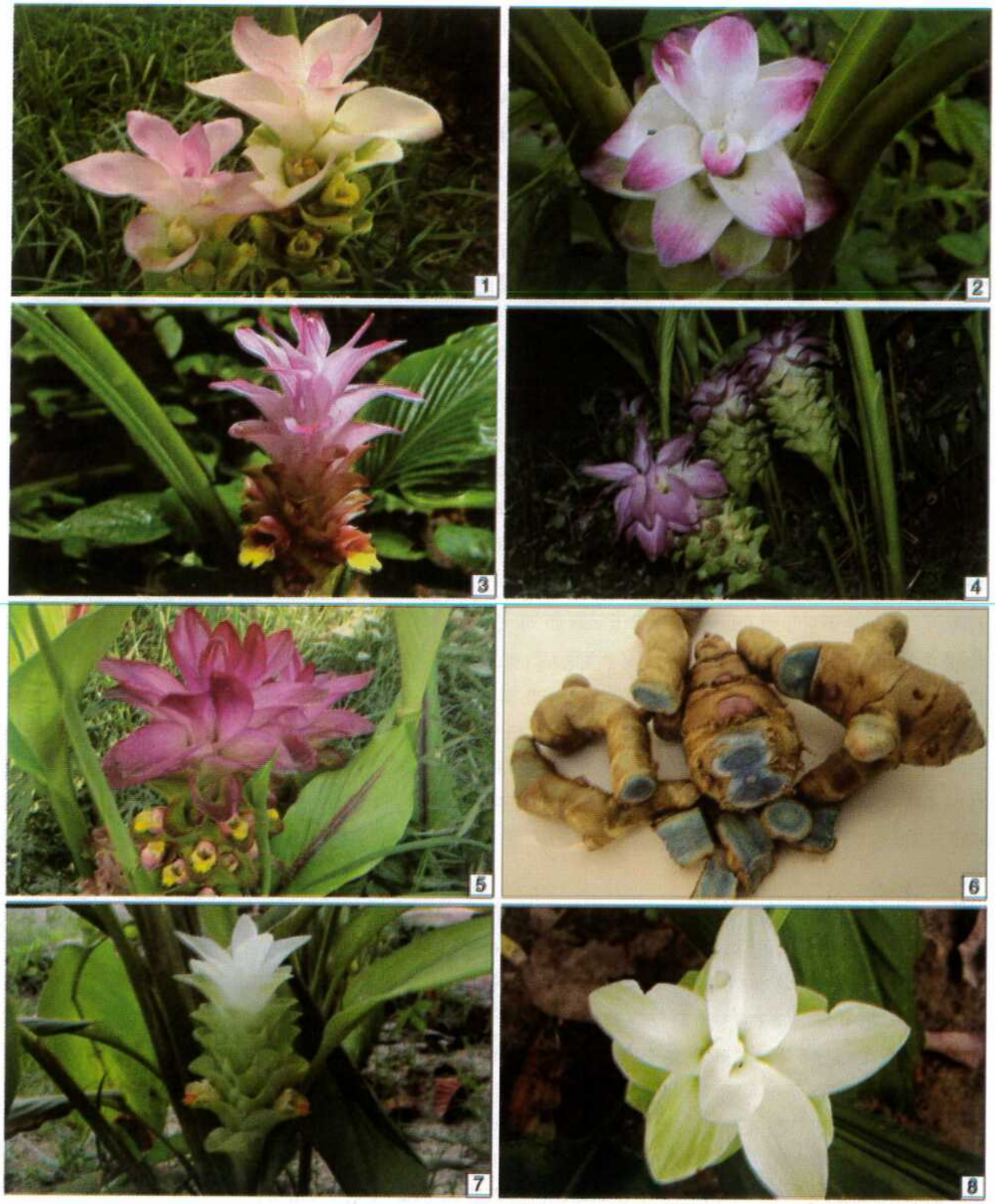

1. *कूर्कुमा अमाडा* (आमा हल्दी) पुष्पित अवस्था में 2. *कूर्कुमा अंगस्टिफोलिआ* (तीखुर) पुष्पित अवस्था में 3. *कूर्कुमा एरोमैटिका* (वन हल्दी) पुष्पित अवस्था में 4. *कूर्कुमा जेडोआरिआ* (कचूर) पुष्पित अवस्था में 5. *कूर्कुमा केसिआ* (काली हल्दी) पुष्पित अवस्था में 6. *कूर्कुमा केसिआ* (काली हल्दी) के ताजे प्रकन्द 7. *कूर्कुमा लॉन्गा* (हल्दी) का पुष्पित पौधा 8. *कूर्कुमा लॉन्गा* (हल्दी) का पुष्प गुच्छ।

तरह किया जाता है पर मुख्यरूप से इसका प्रयोग पूजा–पाठ व तांत्रिक क्रियाओं में अधिक होता है। काली हल्दी का पौधा शुभ व मंगलकारी माना जाता है तथा इसके कन्द का उपयोग तंत्र शास्त्र में मोहन व वशीकरण के लिए होता है। दीपावली के दिन लक्ष्मी प्राप्ति हेतु काली हल्दी की गांठ की पूजा भी की जाती है। इसके अतिरिक्त काली हल्दी का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों, अर्श, ज्वर, चर्म रोगों आदि में भी किया जाता है। पुष्पों व पत्रों की सुंदरता के कारण यह उद्यानों में लगाने के लिए उपयुक्त पादप है। काली हल्दी भारत का एक संकटग्रस्त पौधा है।

5. *कूर्कुमा जेडोआरिआ,* प्रचलित नामः कचूर, कर्चूर हरिद्रा; अंग्रेजी नामः व्हाईट टरमेरिक, जेडोरी

उपयोग – यह जाति भारत में वन्य व रोपित दोनों अवस्था में पायी जाती है। इसके प्रकन्दों से कर्पूर मिश्रित कस्तूरी जैसी गंध आने के कारण यह कपूर–कचरी *(हेडाइकियम स्पिकेटम)* के स्थान पर प्रयोग की जाती है तथा इसी कारण आयुर्वेद में कई स्थानों पर 'शठी' के नाम से जानी जाती है। कुछ स्थानों पर इसको काली हल्दी के स्थान पर भी उपयोग किया जाता है। इसके प्रकन्दों से एक प्रकार का मांड (स्टार्च) निकलता है जिसको 'शोती स्टार्च' कहा जाता है। आयुर्वेद के अनुसार कचूर हल्दी का उपयोग सर्दी–जुकाम, उदरविकार, कफ–वातदोष, कृमि आदि में किया जाता है। यह मुखशोधक के रूप में भी प्रयोग की जाती है, कुछ स्थानों पर गायक इसको आवाज साफ करने के लिए चूसते हैं। जलोदर में इसके पत्तों का रस पिलाया जाता है तथा मोच व अंदरुनी चोट में इसको पीसकर फिटकरी के साथ मिलाकर लेप करते हैं।

6. *कूर्कुमा लॉन्गा,* प्रचलित नामः हल्दी, हरिद्रा; अंग्रेजी नामः टर्मरिक, येलो जिंजर

उपयोग – हल्दी की अन्य सभी जातियों में सबसे ज्यादा उपयोगी, प्रचलित व लोकप्रिय यही प्रजाति है जिसका विविध रूपों में उपयोग पूरे भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी होता है। यह घरेलू मसाले से लेकर धार्मिक कर्मकांड, वैवाहिक कार्यक्रमों, प्राकृतिक रंजक में उपयोग होने के साथ–साथ एक उत्तम औषधि के रूप में भी प्रयोग की जाती है। यह भारत में मुख्य रूप से रोपित अवस्था में ही देखी जाती है पर कभी–कभी वन्य रूप में भी मिल जाती है।

इसके विविध गुणों व उपयोगों का वर्णन नीचे विस्तार से दिया जा रहा है–

भोजन में उपयोग – हल्दी प्राचीन एवं पवित्र मसालों में सम्मिलित है। प्राचीन समय से ही हल्दी का प्रयोग घरों में होता आ रहा है। हल्दी की छोटी सी गांठ में बड़े गुण होते हैं। शायद ही कोई ऐसा घर हो जहाँ हल्दी का उपयोग न होता हो। हल्दी का भारतीय रसोई में महत्त्वपूर्ण स्थान है और सामान्य मसाले के रुप में दैनिक भोजन में प्रयोग की जाती है। भोजन के स्वाद को बढ़ाने, सुगंध और रंगत देने के लिए हल्दी का बहुतायत में इस्तेमाल होता है। हल्दी का सबसे ज्यादा उपयोग दाल व सब्जी में किया जाता है। भारतीय स्वादिष्ट व्यंजनों के रंग और स्वाद का एक राज हल्दी ही है। हल्दी के रंग और सुगंध का क्या कहना। जापान के ओकीनावा शहर में हल्दी की चाय सबसे अधिक लोकप्रिय मानी जाती है। पिसी हुयी सूखी हल्दी के साथ ही कई स्थानों पर कच्ची हल्दी भी भोजन आदि में उपयोग की जाती है, कच्ची हल्दी का उपयोग अदरक के स्थान पर भी किया जाता है।

धार्मिक महत्व – भारतीय संस्कृति में हल्दी का बहुत महत्व है। शास्त्रों के अनुसार हल्दी का उपयोग सभी प्रकार के पूजन–कार्य में आवश्यक रूप से किया जाता है। इसके बिना कई प्रकार के पूजन कर्म पूर्ण नहीं माने जाते हैं। इसी वजह से पूजन सामग्री में हल्दी का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू धर्म में हल्दी को पवित्र और भी माना जाता है। पूजा–अर्चना से लेकर पारिवारिक संबंधों की पवित्रता तक में हल्दी का उपयोग होता है। पूजा–अर्चना में हल्दी को तिलक व चावल के साथ इस्तेमाल किया जाता है। हल्दी को बुझे चूने के साथ मिलाकर 'रोली'(कुमकुम) भी तैयार की जाती है, जिसका उपयोग धार्मिक व मांगलिक कार्यों में तिलक के रूप में किया जाता है। हल्दी को शुभता का संदेश देने वाला माना गया है। हल्दी की साबुत गांठ का भी धार्मिक व मांगलिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है। हल्दी की गांठ को पूजा–स्थान में व तिजोरी में भी रखा जाता है। हल्दी की गांठ से बनी गणेश प्रतिमा की पूजा का विशेष महत्व है। वैवाहिक कार्यक्रमों में हल्दी के उपयोग का अपना एक विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही विवाह के निमंत्रण पत्र को हल्दी के रंग से स्पर्श कराया जाता है तथा दूल्हे व दुल्हन को हल्दी का उबटन लगाकर वैवाहिक कार्यक्रम पूरे करवाए जाते हैं। इससे सुंदरता में निखार आता है। ऐसे ही अनेक अवसरों पर हल्दी को उपयोग में लाया जाता है।

हिन्दू धर्म में हल्दी को पवित्र माना जाता है। ब्राह्मणों द्वारा पहना जाने वाला जनेऊ तो बिना हल्दी के रंगे पहना ही नहीं जाता है। जब भी जनेऊ बदला जाता है तो हल्दी से रंगे जनेऊ को ही पहनने की प्रथा है। ग्रामीण अंचलों में आज भी साड़ी को रंगने में हल्दी का प्रयोग किया जाता है। तंत्र–ज्योतिष में भी हल्दी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तंत्रशास्त्र के अनुसार, बगलामुखी देवी के मंत्र का जप पीले वस्त्रों में तथा हल्दी की माला से होता है।

औषधीय गुण– हल्दी में अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिए हल्दी रामबाण है। संक्रमणरोधी (एंटीसेप्टिक) गुणों के कारण इसका प्रयोग प्राचीनकाल से ही रूप–सौन्दर्य के निखार के साथ–साथ अनेक कष्टप्रद व असाध्य बीमारियों के निदान हेतु भी किया जाता रहा है। इसका प्रयोग कफ विकार, यकृत विकार, अतिसार आदि रोगों को दूर करने में होता है। हल्दी के सेवन से शरीरगत विषों (टॉक्सिन्स) को निकाला जा सकता है।

हल्दी को आयुर्वेद में प्राचीन काल से ही एक चमत्कारिक द्रव्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। आयुर्वेद में हल्दी के गुणों का वर्णन कई ग्रंथों में मिलता है,यह वात, कफ तथा पित्त दोषों को दूर करती है। आचार्य चरक ने हल्दी को लेखनीय, कुष्ठध्न (कुष्ठ मिटाने वाले), कण्डूध्न (खुजली दूर करने वाली), विषध्न (विष नष्ट करने वाली) गुणों से युक्त माना है। आचार्य सुश्रुत ने हल्दी को श्वास रोग, कास (खांसी), अरोचक, रक्तपित्त, अपस्मार, नेत्ररोग, कुष्ठ और प्रमेह आदि रोगों पर लाभकारी माना है।प्राचीन काल से ही हल्दी का उपयोग घर के चिकित्सक के रूप में किया जाता रहा है। आहार अनुपूरक (हेल्थ सप्लीमेंट) के रूप में भी हल्दी का उपयोग होता है।

वैज्ञानिक शोध के अनुसार हल्दी शरीर में घातक कोशिकाओं की वृद्धि को रोकने में सहायक होती है। अमरीका में अग्नाश्य कैंसर, अल्जाइमर, मल्टीपल मीलोमा और कोलोरेक्टल कैंसर आदि में हल्दी के सक्रिय क्षाराभ (एक्टिव एजेंट)'करक्युमिन' द्वारा उपचार का प्रयोग भी चल रहा है। बाजार में उपलब्ध सौंदर्य–प्रसाधनों में हल्दी का प्रयोग किया जाता रहा है। हल्दी का कोई पार्श्व प्रभाव (साइड इफेक्ट) नहीं होता है। अभी हाल ही में कई सनस्क्रीन उत्पादों में भी हल्दी के प्रयोग की बात सामने आई है। हल्दी में मौजूद 'टेट्राहाइड्रो–करक्यूमिनाइड'(टीएचसी) की प्रभावशाली एंटीऑक्सीडेंट पर कई शोधकार्य हो रहे हैं। जिसके अनुसार हल्दी का प्राकृतिक रंग चेहरे के रंग को निखारने और त्वचा संबंधी रोगों में रामबाण है।

भोजन में हल्दी का समुचित मात्रा में उपयोग करने से शरीर का वजन भी नियंत्रित रहता है। यह उत्तम रक्तशोधक भी है। हल्दी रक्तवसा (कॉलेस्ट्रोल) को कम करती है, जिससे आप कई प्रकार की बीमारियों से भी बच सकते हैं। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता (इम्यून सिस्टम) को भी बल देती है। पर्याप्त मात्रा में लौहतत्व पाए जाने के कारण हल्दी शरीर में खून का निर्माण करने में मदद करती है।आयुर्वेद के अनुसार हल्दी तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, वर्ण्य, लेखन, कुष्टघ्न, विषघ्नव शोधन गुण युक्त है। इसके प्रयोग से कफ, पित्त, अरूचि, कुष्ठ, विष, प्रमेह, व्रण, कृमि, पान्डु रोग, अपच आदि रोंग दूर होते हैं। भावप्रकाश निघन्टु में हरिद्रा (हल्दी) के गुणों का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया गया है–

हरिद्रा कांन्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी। कृमिघ्नी हल्दी योषित्प्रिया हट्टविलासिनी।।
हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत्। वर्ण्या त्वग्दोश मेहास्त्रशोथ पाण्डु व्रणापहा ।। (भावप्रकाश निघन्टु)

हल्दी किसी भी उम्र के व्यक्ति को दी जा सकती है चाहे वह बच्चा, जवान, बूढ़ा अथवा गर्भवती महिला ही क्यों न हो। हल्दी पूर्ण रूप से सुरक्षित औषधि है हालांकि इसकी अधिक मात्रा अपच, दस्त, कब्ज का कारण और हृदय के लिए हानिकारक हो सकती है। पित्त की खराबी और पेप्टिक अल्सर में भी हल्दी का सेवन हानिकारक माना जाता है।

वैसे देखा जाये तो भारत में पायी जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों का प्रयोग यहाँ के लोग आदिकाल से करते आ रहे हैं तथा इनमें से कई वनस्पतियाँ आज उनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी हैं। ऐसी ही वनस्पतियों में हल्दी का नाम अग्रगण्य है जिसका उपयोग दैनिक जीवन में विविध रूपों में किये जाने के साथ–साथ मांगलिक तथा धार्मिक कार्यों व औषधि के रूप में भी व्यापक स्तर पर किया जाता है। हल्दी की एक छोटी सी गांठ में कितने गुण हैं इसके विषय में अभी भी सम्पूर्ण जानकारी का अभाव है तथा इस क्षेत्र में शोधकार्य प्रगतिशील हैं। हल्दी की कुछ ऐसी भी जातियां हैं जो अपने प्राकृतिक वासस्थान नष्ट होने अथवा अधिक दोहन होने के कारण आज संकटग्रस्त श्रेणी में आ चुकी हैं। इन संकटग्रस्त हल्दी की प्रजातियों को संरक्षण की नितांत आवश्यकता है।

संकटग्रस्त वृक्ष "बीजा साल" का औषधीय महत्व

कुमार अम्बरीश एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

कुमाँऊ, उत्तराखण्ड के तराई क्षेत्रों में पायी जाने वाली वृक्ष जाति "बीजा साल" को भारत में विजयासार, विजाका, पितासार, पितासलाका, पियासाल, बेंगा आदि कई नामों से जाना जाता है। फैबेसी कुल की इस वृक्ष जाति का वानस्पतिक नाम *टेरोकार्पस मारसुपियम* है, जो विशेषतः भारत, नेपाल एवं श्रीलंका में मूल रूप से पायी जाती हैं। भारत में यह पर्णपाती वृक्ष जाति मध्य भारत, बंगाल, उड़ीसा, पश्चिमी घाट, कर्नाटक एवं केरल के जंगलों में पायी जाती है। भारतीय भू–भाग में समुद्रतल से 100 मीटर से 900 मीटर की ऊंचाई तक उष्णकटिबंधीय वन क्षेत्रों में उगने वाली यह जाति 20–30 मीटर लम्बी होती है। इसकी छाल खुरदरी व गाढ़े बादामी रंग की होती है, जिस पर हल्की गुलाबी रंग की धारियां पायी जाती हैं, इसी छाल से रक्त के समान एक गोंद निकलता है जो अपने "मधुमेह निवारक" औषधीय गुणों के लिये आदिकाल से ही विख्यात है। इसके तने से प्राप्त लाल रंग की काष्ठ भी अतिविशिष्ठ है इसकी पत्तियाँ संयुक्त वृताकार, अण्डाकार (5–7) होती हैं। इसके फूलों का रंग पीला होता है, एवं पुष्पन की प्रक्रिया जुलाई से अक्टूबर तथा फलन नवम्बर से दिसम्बर माह में पूर्ण होता है, फलियों का आकार गोलाकार होता है, जिसमें एक पंखनुमा आकृति सृजित होती है, जो इसके एकलबीज के वितरण में मदद करती है।

टेरोकार्पस मारसुपियम प्राकृतिक वास में पुष्पित अवस्था में।

औषधीय महत्व– यह वृक्ष प्राचीन काल से ही अपने मधुमेह रोग की रोकथाम के लिए विख्यात है। साथ ही यह त्वचा सम्बन्धी रोगों जैसे कुष्ठ, ल्यूकोडर्मा आदि, हड्डी जोड़ने, आर्थराईटिस एवं हृदय संम्बन्धी रोगों में भी लाभप्रद पाया गया है। पहले भारत में मधुमेह रोग एक बहुत बड़ी समस्या नहीं थी, लेकिन वर्तमान में अव्यवस्थित दिनचर्या के चलते भारत में प्रति 10 व्यक्तियों में एक व्यक्ति इस रोग से पीड़ित है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस संकटग्रस्त वृक्ष की महत्ता और भी बढ़ जाती है। मध्य भारत में इसकी लकड़ी के गिलास बनाकर रात भर उसमें पानी भरकर पीने से मधुमेह नियंत्रित किया जास सकता है। उत्तर भारत व दक्षिण भारत में इसकी छाल, गोंद एवं काष्ठ से आयुर्वेदिक दवाईयाँ विकसित की गयी जो बाजार में उपलब्ध हैं। कई कम्पनियाँ इस बात का दावा करती हैं कि इसके गोंद के औषधीय प्रयोग से अग्नाशय की बीटा–कोशिकायें भी पुर्नजीवित हो जाती हैं, एवं वे पुनः इंसुलिन निर्माण शुरू कर देती हैं। हमने अपने सर्वेक्षण के दौरान नंधौर वन्यजीव अभयारण्य, कुमाँऊ, उत्तराखण्ड में इस वृक्ष जाति को संग्रहित किया एवं इससे जुड़ी अन्य जानकारियां भी एकत्रित की। यहाँ पोखरिया जाति के लोग इसकी छाल, तने एवं पत्तियों को तोड़कर छाया में सुखाकर तांबें के पात्र में रातभर भिगोकर "मधुमेह नियंत्रण" एवं ऊर्जावान बने रहने के लिए इसका प्रयोग करते हैं।

संरक्षण – वर्तमान में औषधीय प्रयोग हेतु "बीजा साल" की बढ़ती मांग एवं अत्यधिक दोहन से यह जाति "संकटग्रस्त" हो गयी है। अतः इस वृक्ष जाति को जंगलों में अत्यधिक रोपित करना चाहिये तथा इसके अनैतिक कटान पर पूर्ण प्रतिबंध लगना चाहिए जिससे इस बहुमूल्य वृक्ष बीजा साल का संरक्षण किया जा सके।

अंजीर – एक बहुगुणीय औषधीय वनस्पति

पूजा गुप्ता एवं भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

अंजीर का वैज्ञानिक नाम *फाइकस कैरिका* है एवं यह मोरेसी कुल का सदस्य है। यह सामान्यतः 15–20 फुट ऊँचाई का छोटा या सामान्य आकार का पर्णपाती वृक्ष होता है। इसकी पत्तियॉ चौड़ी तथा अंडाकार 3–5 पलीयुक्त खुरदरी तथा ऊर्ध्व सतह से रोमिल होती हैं एवं फल नाशपाती के आकार के, स्वाद में कषैले, गुदेदार तथा खोखले एवं परस्पर भिन्न–भिन्न रंग के होते हैं, जिसके सिरे पर संकीर्ण छिद्र होता है तथा पिटिका के समान अगणित छोटे नर तथा मादा पुष्प अंतः पृष्ठ को अस्तरित किये रहते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की प्रान्तीय भाषाओं में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे– हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी में अंजीर, तेलगू में अंजरू, तमिल में सिमाअली, तेनली, कन्नड़ में अंजूरा तथा मलयालम में सिमाअट्टी आदि।

अंजीर इतना गुणकारी फल है कि भारत में इसे मेवे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। विश्व के अनेक देशों में भी इसके फलों को सुखाकर मेवे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। भारत देश के कई प्रदेशों में अंजीर के वृक्षों को लगाये जाते हैं, किन्तु उष्ण जलवायु के अभाव में स्वादिष्ट अंजीरों का उत्पादन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता, जिस कारण भारत में उत्तम किस्म के अंजीर अरब देशों से आयात किये जाते हैं।

भौगोलिक वितरण – विश्व में फाइकस की वृक्षों, इपिफाइटिक व छोटे पौधों एवं झाड़ियों के रूप में लगभग 800 जातियां पाई जाती है। इसकी खेती मुख्यतः भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में, पूर्व में टर्की से लेकर, पश्चिम में स्पेन तथा पूर्तगाल तक की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा चिली में इसकी व्यवसायिक खेती होती है तथा कुछ सीमा तक इसे अरब, फारस, भारत, चीन तथा जापान में भी उगाया जाता है। भारत में इसका व्यवसायिक उत्पादन महाराष्ट्र में पुणे और दक्षिण भारत में वल्लारी तथा अनन्तपुर जिलों तक सीमित है। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा कर्नाटक में यह बहुधा उद्यानों व घरों के आस पास खाली जगह में उगाया जाता है।

संवर्धनीय जातियॉ – इसकी मुख्य जातियॉ जैसे कशलिका, स्मर्णिका, वर्दिका, वैजन्ता, कदोता, *नेपोलिटाना नाइग्रा* व *जैन्टाईल वियागो* आदि हैं। इनकी खेती मुख्यतः बीज या कायिक विधि द्वारा तथा हार्डवुड कटिंग विधि द्वारा की जाती है। इसमें वर्ष में दो बार वृक्षों पर फल लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु में लगने वाले फल अधिक गुणकारी एवं स्वादिष्ट होते हैं। अंजीर के फल प्रारंभ में हरे रंग के एवं पकने के बाद लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं।

महत्वपूर्ण रासायनिक तत्व– ताजा अंजीर बड़ा स्वादिष्ट तथा उत्तम पोषक शक्ति वाला फल है, इसमें लगभग 84 प्रतिशत गुदा और 16 प्रतिशत छिलका होता है। ताजे भारतीय अंजीर के खाद्य भाग की औसत संरचना में आर्द्रता 80.8 प्रतिशत, प्रोटीन 1.3 प्रतिशत, खनिज पदार्थ, 0.6 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 17.17 प्रतिशत, कैल्शियम 0.06 प्रतिशत, फास्फोरस 0.03 प्रतिशत और आयरन 1.2 प्रतिशत, राइबोफ्लेविन 50 मि.ग्रा. एवं एस्कार्बिक अम्ल 0.6 मि.ग्रा. होता है। इसका महत्व इसके खनिज युक्त शर्करा तत्वों के कारण होता है, जो ताजे फलों में औसत 15.5 प्रतिशत तथा सूखे फलों (मेवों) में 51.4 प्रतिशत होता है।

अंजीर की पत्तियां पशुओं के लिए चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं, जिन्हें फल पकने के बाद काटा जाता है। इसकी पत्तियों में आर्द्रता 7.6 प्रतिशत, अपरिष्कृत प्रोटीन 4.3 प्रतिशत, अपरिष्कृत वसा 1.7 प्रतिशत, अपरिष्कृत तंतु 4.7 प्रतिशत, राख 5.3, नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष 16.4 और पैन्टोजन 3.6 प्रतिशत होता है। पत्तियों के मुख्य खनिज घटक कैल्शियम, सिलिका और पोटैशियम होते हैं।

अंजीर के पेड़ से एक प्रकार का रबड़ क्षीर भी मिलता है जिसमें कूचकु 2.4 प्रतिशत, बिरोजा, एल्ब्युमिन, सेरिन, शर्करा और मैलिक एसिड होता है। रबड़क्षीर में रेनीन, प्रोटियोलिटिक एन्जाइम, डायस्टेस, एस्टेरेस, लाइपेस, वैटालेस और परॉक्सीडेस भी होते है। इसका उपयोग मुख्यतः कृमिनाशक के रूप में होता है।

अंजीर/फाइकस कैरिका का औषधीय महत्वः

1. ताजे अंजीरों में 80 प्रतिशत जल की मात्रा होती है। इनमें विटामिन–ए होता है जो नेत्र रोगों से सुरक्षा प्रदान करता है। इनमें लौह तत्व (आयरन) भी होता है, अतः रक्ताल्पता से पीड़ित व्यक्तियों को अंजीर के सेवन से लाभ मिलता है, क्योंकि अंजीर में उपस्थित लौह से शरीर में रक्त की वृद्धि तीव्र गति से होती है। अंजीर में अतिरिक्त गुणकारी तत्व भी होते है जैसे कि फास्फोरस अम्ल, मैग्नीशियम, पोटैशियम, और क्लोरीन।

2. अंजीर छोटे बच्चों के लिए बहुत गुणकारी होता है। यह बच्चों की अस्थियां व दातों को मजबूत बनाता है क्योकि अंजीर में अधिक मात्रा (10.66 प्रतिशत) में कैल्शियम होता है। आयुर्वेद में अंजीर के मधुर, स्निग्ध, तृप्तिकारक गुणों की पुष्टि होती है। अंजीर के सेवन से वायु रोग विकार नष्ट होते हैं। इसके सेवन अपच एवं कब्ज में राहत मिलती है।
3. संक्रामक रोगों से पीड़ित एवं शारीरिक दुर्बलता की स्थिति में प्रतिदिन अंजीर सेवन किया जाए तो शारीरिक दुर्बलता, थकावट व मानसिक तनाव से सुरक्षा पाई जा सकती है।
4. अंजीर की जड़ और शाखाओं की छाल का उपयोग कुष्ठनाशक औषधि बनाने में किया जाता है। अंजीर को दूध में उबालकर खाने से शारीरिक शक्ति विकसित होती है।
5. ग्रीष्मऋतु की उष्णता से बचने के लिए अंजीर का सेवन किया जाता है। अंजीर को छीलकर उसके बीच में शक्कर भरकर रख दे एवं प्रातः उठकर इसका सेवन करने से शारीरिक ताप को नियंत्रित किया जा सकता है।
6. रक्त की विकृति के कारण रक्त विकारों से ग्रसित होने पर अंजीर और बादाम दूध में उबालकर सेवन करने से बहुत लाभ होता है। अस्थमा में भी अंजीर के पके फलों का प्रयोग लाभदायक माना जाता है।
7. मधुमेह रोग में प्रतिदिन अंजीर खाने से बहुत लाभ होता है। दो–तीन अंजीर खाने से शारीरिक शक्ति भी विकसित होती है। पाचन क्रिया भी तीव्र होती है। अंजीरों को सिरके में डालकर रखे और दो–तीन बार इसका सेवन करने से प्लीहा (तिल्ली) की विकृति नष्ट होती है।

अंजीर (फाइकस कैरिका) का पारम्परिक उपयोग

1. ताजे व सूखे फलों को बादाम के साथ व फल को टॉनिक की तरह उपयोग किया जाता है।
2. लैटैक्स (दूध) को पेट दर्द व उन्य उदर विकार में, खून की कमी व हृदय रोग में, कब्ज में, पैरालिसिस में, त्वचा में होने वाली सामान्य एलर्जी व खुजली में उपयोग किया जाता है।
3. छाल, पत्ती व दूध को वनज घटना, भूख न लगना, रक्त की कमी, जलोदर में उपयोग किया जाता है।
4. लैटैक्स (दूध) को मधुमक्खीयों के काटने पर उपयोग किया जाता है।
5. ताजी पत्तियो को रस अस्थ्मा के उपचार में
6. छाल हड्डियों के उपचार में
7. फल व दूध लैटैक्स घाव होने, त्वचा के जलने या झुलसने पर
8. फल को उबालकर उसका रस पथरी, कफ, लीवर संबंधी रोगो में उपयोग किया जाता है।
9. पत्तियों का उबालकर उसका रस डायबिटिज़, कान दर्द एवं बवासीर में उपयोग किया जाता है।
10. सुखे फल को चीनी के साथ दिन में दो बार पानी के साथ ऑखों की रोशनी बढती है।
11. बुखार में 20 मिलिलीटर पत्तियों का रस एक कप बकरी के दूध के साथ सुबह खाली पेट लेने से पिलिया मे राहत मिलती है।
12. फल को पानी में रात भर भिगोकर, सुबह इसका सेवन 15 दिनों तक करने से कमजोरी से राहत मिलती है।

बालमखीरा (*किगेलिया अफ्रीकाना*) : एक बहुउपयोगी वनस्पति

वीरेन्द्र मधुकर, अम्बर श्रीवास्तव एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

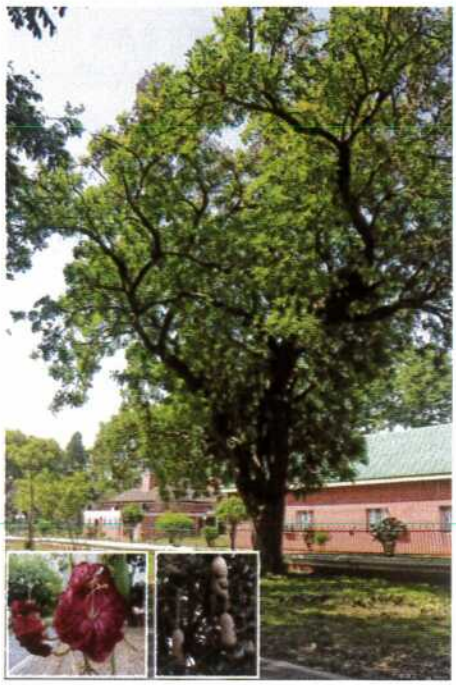

मनुष्य प्राचीन काल से ही वनस्पतियों का प्रयोग औषधि के रूप में करता आ रहा है, जिनमें भिन्न–भिन्न प्रकार के पौधों का विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता रहा है। ऐसा ही एक औषधीय एवं मनोहारी वृक्ष है बालमखीरा, जो अपने सुन्दर पुष्पों, सघनछाया व औषधीय गुणों के कारण सुविख्यात है तथा अपने विशिष्ट गुणों के कारण हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। बालमखीरा वास्तविक रूप से दक्षिण अफ्रीका मूल का पादप है, किन्तु अपनी अनुपम छटा एवं औषधीय गुणों के कारण विश्व के कई देशों में इसका रोपण किया जाने लगा है। बालमखीरा मुख्य रूप से उष्ण–उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र का वृक्ष है। भारत में इसका रोपण मुख्य रूप से सड़कों के किनारे विथि वृक्ष (एवेन्यू ट्री) के रूप में किया जाता है। बालमखीरा स्थानीयतः भारतीय वृक्ष न होते हुये भी भारत के कई आदिवासी क्षेत्रों में औषधि के रूप में पहचाना व उपयोग किया जाता है। यह वृक्ष पूरे भारत में पाया जाता है परन्तु पश्चिम बंगाल में इसकी संख्या अधिक है। वन क्षेत्र में अधिकतर तालाब, नदी अथवा नमभूमि के पास पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय – बालमखीरा के सदाहरित 30–50 फुट ऊंचे वृक्ष होते हैं। इसके पत्तियों की निचली सतह छूने में खुरदरी प्रतीत होती है। इसके एक पत्र में लगभग 7–9 पत्तियाँ होती हैं जो पर्ण वृन्त पर अभिमुख क्रम में स्थित होती हैं। पत्तियाँ लम्ब–गोलवत सरल धार युक्त व अत्यंत छोटे पर्णवृन्त पर स्थित होती हैं। इसका तना गोल एवं बहुशाखीय होता है तथा छाल धूसरवर्ण की चिकनी सतहयुक्त होती है। इसके पुष्प कत्थई लाल रंग के 2–3 फुट लम्बे पुष्प वृन्त पर लगे होते हैं। सम्पूर्ण पुष्प गुच्छ एक झूमर की भाँति प्रतीत होता है, जो अत्यंत शोभनीय लगता है। परागण मुख्यतया चमगादड़, चींटियों और पक्षियों के द्वारा होता है। इसके फल 1–1. 5 फुट लम्बे व मटमैले या धूसरवर्ण के होते हैं, जिनकी बाहरी सतह कठोर व खुरदरी होती है, जो सूखने के पश्चात सिकुड़ जाता है।

प्रयोग– बालमखीरा मुख्य रूप से ग्रामीण व आदिवासी जनजातियों के बीच एक औषधि वृक्ष के रूप में प्रसिद्ध है तथा कई जनजातियाँ वर्षों से पारम्परिक रूप से इसका उपयोग करती आयी हैं। इसके प्रभाविक गुणों को देखते हुए वर्तमान समय में कई भैषज उद्योग इसका उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में करने लगे हैं। अनेक प्रकार के चर्मरोग जैसे फोड़े–फुंसी, खाज–खुजली, कवक–संक्रमण में इसका उपयोग किया जाता है। आन्तरिक बिमारियाँ जैसे पेचिस, टेपवर्म, मलेरिया, डायबिटीज इत्यादि में विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। भारत में मुख्य रूप से इसके फल के चूर्ण का प्रयोग उदर विकारों, आंत्ररोगों तथा मूत्रकृच्छ (गुर्दे की पथरी) आदि रोगों में किया जाता है। भारत के विभिन्न आदिवासी समूह इसके विभिन्न भागों का विविध रूप में प्रयोग करते हैं। मुख्य रूप से इसके सूखे फलों व छाल का विभिन्न रोगों में औषधीय प्रयोग किया जाता है। इस वृक्ष में स्टेरॉयड सैपोनिन और फ्लेवोनॉयड्स ल्युटेयोलिन, क्वेरसिटिन प्रचुर मात्र में पाये जाते हैं। फल का अर्क चेहरे एवं हाथ पर होने वाले सोलर केरेटोसिस तथा दाग धब्बों को दूर करता है, फल के अर्क का लेप वक्ष को विकसित करता है तथा वक्षस्थल के कोलेजन फाइबर को मजबूती प्रदान करता है। फल के अर्क से विभिन्न प्रकार के साबुन, शैम्पू एवं क्रीम बनाये जाते हैं जो आँखों के नीचे काली झाईयां एवं झुर्रियों को कम करते हैं। इस प्रकार यह वृक्ष सौंदर्य प्रसाधन में भी अति उपयोगी माना गया है। प्रकृति में पाये जाने वाले विभिन्न पेड़–पौधे, कई प्रकार से मानव जीवन को प्रभावित करते हैं। भारत में ऐसी कई वनस्पतियाँ हैं जो विभिन्न कालावधियों में विदेशों से आकर यहाँ के वनस्पतिजात (फ्लोरा) के साथ ही जनजीवन मेंरच बस गयी हैं, परन्तु बालमखीरा इन सभी में एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसका नाम बालमखीरा कैसे पड़ा इस विषय में अभी भी जानकारी का अभाव है, कुछ स्थानों पर इसको 'झाड़फानूस' के नाम से भी जाना जाता है, जो शायद कालान्तर में इसके झूमर जैसे लटकते फूलों के कारण दिया गया हो।

वन ककड़ी (*सिनोपोडोफायलम हेक्सेड्रम*) के औषधीय उपयोग एवं संरक्षण नीति

आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

भारत एक अद्वितीय देश है जो अपनी भौगालिक स्थिति, विभिन्न ऋतुओं तथा अनेक प्रकार की जलवायु एवं वन सम्पदा के संदर्भ में विश्व में समृद्वतम राष्ट्रों में गिना जाता है। भारत में हिमालय की शीतल जलवायु से लेकर दक्षिण की कटिबंधीय जलवायु तक अनेक वनस्पतिक विविधता पाई जाती है। भारत में जड़ी बूटियों के चिकित्सीय प्रभाव का ज्ञान ऋषि मुनियों चरक, सुश्रत आदि को प्रचीनकाल से ही था तथा इसका वर्णन वेदों में भी मिलता है। इतिहास से स्पष्ट है कि आदिकाल से विभिन्न रोगों के उपचार का एकमात्र साधन औषधीय वनस्पतियाँ ही रही हैं और उन्हें प्राकृतिक रुप में अर्क या चूर्ण के रुप मे प्रयोग किया जाता रहा है। अज्ञानता में मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कई बहुमूल्य औषधीय पौधों को विलुप्त होने की कगार तक पहुँचा दिया है। एक ऐसा ही सुपरिचित औषधीय पौधा है "वन ककड़ी", जो जड़ीबूटी में विशेष रुप से विख्यात है। भारतीय भू–भाग में समुद्रतल से 2800–4500 मीटर तक की ऊँचाई पर हिमाद्री व उपहिमाद्री वनों में उगने वाला यह पौधा हिमालय क्षेत्र में जम्मू और कश्मीर, हिमालय प्रदेश, उत्तराखंड तथा चीन, नेपाल और भूटान में पाया जाता है।

वनस्पतिक वर्णन– बरबेरिडेसी कुल के इस पुष्पीय पौधे का वैज्ञानिक नाम *सिनोपोडोफाइलम हेक्सेड्रम* है, जिसे संस्कृत में वन्य कर्कटी, हिन्दी में बवरचीमका, बनबैगन, दापरी, बंगाली में पेपरा, कश्मीर में वनवानगन और अंग्रेजी में इन्डिन मैपल के नाम से जाना जाता है। यह पौधा छोटा, सीधा, बहुवर्षीय एवं शाकीय होता है और ऊंचाई 1.5–3 फीट तक होती है इसके पीले रंग की जड़ व प्रकंद भूमि पर फैल जाते हैं। इसके पत्ते 15–25 से.मी. व्यास के हस्ताकार, दंतुर 2.5 – 5 से.मी. व्यास के होते हैं, पुष्प सफेद या गुलाबी, प्यालीकार सदृश्य होते हैं जो मई–जून माह में खिलते हैं। और गहरे लाल व रक्तवर्ग के अंडाकार 3–5 से.मी. मांसल फल लगते हैं । इसके फलों में लगभग 15–20 बीज पाये जाते हैं। यह पौधा छायादार नम चिकनी बलुई मिट्टी एवं कार्बनिक तत्वों की अधिकता वाले स्थानों व बुग्याल क्षेत्रों में प्राकृतिक रुप में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन– इसकी जड़ों में पोडोफाईलिना (32–54 प्रतिशत) नामक एल्कोलाइड पाया जाता है इसके अतिरिक्त इसमें पेल्टाटीन, पेल्टाटीन, पोडोफिल्किन, पोडोफिल्लोटॉक्सिन आदि तत्व भी पाये जाते हैं।

औषधीय उपयोग– प्राचीनकाल से ही वन ककड़ी के औषधीय गुण सर्वविदित हैं, इसके प्रकंदों को सुखाकर औषधि के काम में लाया जाता है। यह वातध्न, तिक्त, वीर्यउष्ण, पित्तसारक, संग्राहीकारक, रेचक एवं उद्दीपक होता है। प्रकंदो से प्राप्त "पोडोफिल्लेटोक्सिन"में एंटीमियोटीक प्रभाव होता है (यह कोशिका विभाजन के साथ हस्तक्षेप और कोशिकाओं के विकास को रोकता है) इसलिए इसका उपयोग टयूमर और डिम्बग्रन्थि के कैंसर के उपचार के लिए किया जाता है। यह पेचिश के इलाज में अत्यधिक लाभप्रद है, पोडोफिल्लन रेचक होता है अधिक मात्रा में सेवन करने से यह पेट में तीव्रजलन एवं मरोड़ पैदा कर सकता है इसलिए इसको धीकुवार या अंगूरशफा (बेल्लाडोन्ना) के साथ मिलाकर देते हैं। रसोली या गिल्टी तथा त्वचा रोगों में अत्यधिक लाभप्रद है। इसका इस्तेमाल पीलिया और जिगर के उपचार में भी किया जाता है। इसके फलों को खाया जाता है तथा इसके बीजों का उपयोग शराब के किण्वन में भी किया जाता है।

संरक्षण – देश तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में वन ककड़ी की बढ़ती मांग एवं स्थानीय दोहन के कारण अब इन पौधों को इनके प्राकृतवासों से प्राप्त करना कठिन हो गया है। अवैध व अविवेकपूर्वदोहन व संगठित खेती में कमी के कारण इस जाति को अत्यधिक क्षति पहुँच रही है, अतः इस जाति को साइटिस के परिशिष्ट–।। में भी सम्मिलित किया गया है। जिसका मुख्य उद्देश्य वन्य जातियों को विलुप्त होने से बचाया जा सके। इसके संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाये जाने अति आवश्यक है, प्राकृतवास के संरक्षण के साथ, इसका उत्पादन अनुकूल जलवायु वाले स्थानों पर किया जाना चाहिए। जड़ीबूटियों की खेती हेतु उचित मार्गदर्शन, प्रशिक्षण एवं पादप ऊतक संवर्धन की सहायता से वनककड़ी जैसी बहुमूल्य वनस्पति का संरक्षण किया जा सकता है।

औद्योगिक अनुभाग की वनस्पति गैलरी स्थित रेशा प्रदत्त पौधों का परिचय

ए. के. साहु, बी. के. सिन्हा* एवं सुदेशना दत्ता
औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय,
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,कलकत्ता

भारतीय संग्रहालय के औद्योगिक अनुभाग स्थित वनस्पति गैलेरी सन् 1910 को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में समलित हुआ। सर जॉर्ज वाट ने यह वनस्पति गैलेरी मई 29,1901 को कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में स्थापित की गई थी। सम्पूर्ण भारत से प्राप्त आर्थिक महत्व की वनस्पतियों के नमूनों का एक अनोखा संग्रह इस गैलेरी में प्रदर्शित किये गये हैं। रेशा प्रदान करने वाले पौधों के लगभग 200 नमूनों का संग्रह भी इस वनस्पति गैलेरी में है। इन पौधों से रस्सी, डोरियाँ, मछुआरों का जाल, सिलाई धागे, टोकरी, धनुष का तार, चटाई आदि हस्तशिल्प बनता है। गाँव के अनेक लोक–कार्य सहित मुद्रण कागज के सामग्री के लिये भी रेशों का उपयोग होता है। वनस्पति गैलेरी में प्रदर्शित रेशा प्रदान करने वाले पौधों के 21 नमूनों का संक्षिप्त परिचय वनस्पति नाम, कुल, हिन्दी एवं बंगला नाम के क्रम में प्रस्तुत लेख में दिया गया है ।

कैरिया अरबोरिया

बाहुनिया औंगुलाटा (फेबेसी) बंगला नाम : गुंडगीला – यह पौधा 1–2 मी. तक ऊंचाई का होता है जो असम एवं पश्चिम बंगाल के उष्णकटिबंधीय वनों एवं मैदान क्षेत्र में मिलता है । इसकी छाल से डोरियाँ बनती हैं।

बोहेमेरिया निविया (आर्टिकेसी) हिन्दी नाम : कंखुरा – पूर्वी एशिया का यह पौधा लगभग 1 मी. तक ऊंचाई का होता है। यह पौधा असम एबं पश्चिम बंगाल के मैदानी क्षेत्रो में लगाया जाता है। इसकी छाल से रस्सी, मछुआरों का जाल, सिलाई के धागे आदि बनते हैं।

केलोट्रोपिस जईगानसीया (एसक्लेपिएडेसी) हिन्दी नाम : अकय, बंगला नाम : आकन्द – हर मौसम में मिलनेवाला यह चिरपरिचित पौधा पूरे भारत में मिलता है। इसकी छाल से रस्सी बनाई जाती है जो बहुत मजबूत और टिकाऊ होती है। इससे मछुआरों का जाल भी तैयार किया जाता है।

केनाबिस सटाइवा (केनाबिनेसी) हिन्दी एवं बंगला नाम :गंजा,भांग – मध्य एशिया का यह सुगंधित पौधा भारत के अधिकतर मैदानी क्षेत्रों में उगाया जाता है। यह पौधा नशीले पदार्थों के उत्पादन के लिये चर्चित है। पौधेके तने के रेशे से रस्सी बनाई जाती है जो अधिकतर ग्रामीण हस्तशिल्प में प्रयोग की जाती है।

कैरिया अरबोरिया (बेरिंटोनीऐसी) हिन्दी एवं बंगला नाम : कुम्भी – 1.5–3 मी. तक ऊंचाई का यह वृक्ष पूर्वी और मध्य भारत के उष्णकटिबंधीय वनों मे मिलता है। पौधे की छाल से ग्रामीण क्षेत्रों में डोरियाँ तथा थैले बनाये जाते हैं।

कोक्लोंस्परमम रेलिजीओसम (कोक्लोंस्परमेसी) हिन्दी नाम : पीली कपास, बंगला नाम : कुम्बी – उष्णकटिबंधीय वन मे मिलने वाला यह पौधा 2–4 मी. तक ऊंचाई का होता है। पौधे की छाल के रेशों से मजबूत डोरियाँ बनाई जाती हैं।

क्रोटालेरिया बुरहिया (फेबेसी) हिन्दी नामः खीप – सूखा जमीन मे बढ़ने वाला यह झाड़ी जैसा पौधा 1 मी. तक ऊंचाई का होता है। पश्चिम भारत के राजस्थान, गुजूरात आदि राज्यों मे यह मिलता है । पौधे की छाल के रेशों से रस्सी और डोरियाँ बनती हैं।

क्रिप्टोलेपिस बुकानानी (पेरीप्लोकेसी) हिन्दी नाम : करन्टा– यह पौधा भारत के मैदानी क्षेत्र के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मिलता है । इस पौधे के सूखे फलों से निकले हुये रेशों से ग्रामीण क्षेत्रों में तकिया बनता है।

डेस्मोडियम एलिगन्स (फेबेसी) हिन्दी नाम : संबेर– पश्चिम हिमालय क्षेत्रों में मिलने वाला यह छोटा पौधा लगभग झाड़ी जैसा होता है । पौधे से प्राप्त रेशे से रस्सी एवं टोकरी बनायी जाती है।

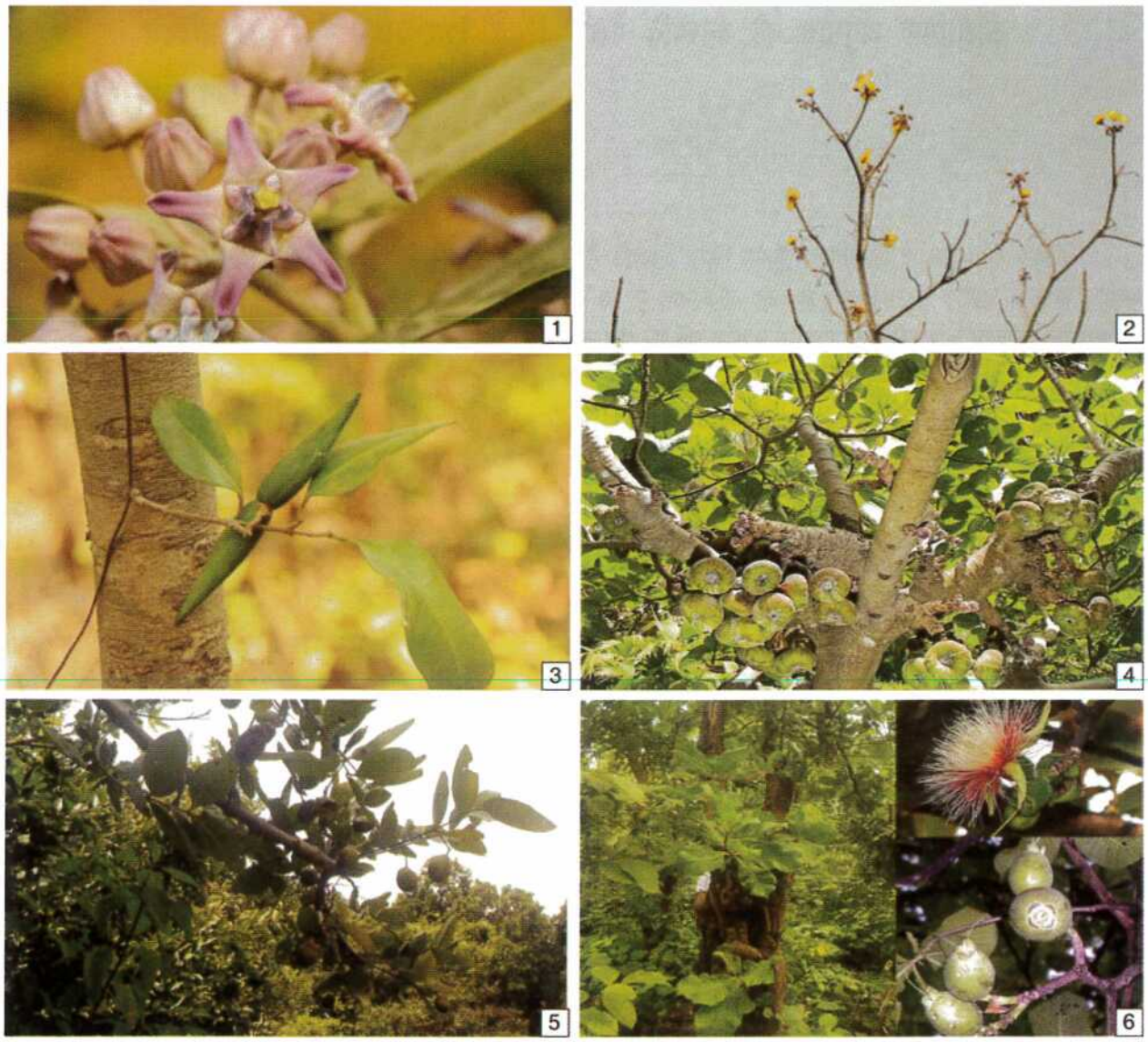

1. *केलोट्रोपिस जईगानसीया* 2. *कोक्लोंस्परमम रेलिजीओसम* 3. *क्रिप्टोलेपिस बुकानानी,*
4. *फाइकस आरिकूलाटा,* 5. *लाजेरस्ट्रोमिया स्पेसिओसा,* 6. *कैरिया अरबोरिया*

एरीथ्रीना वेरिगाटा (फेबेसी) हिन्दी नाम : दादाप – उष्णकटिबंधीय वन में मिलने वाला यह पौधा 2–3 मी. ऊंचाई का होता है। पौधे की छाल से निकले रेशों से डोरियाँ बनती हैं।

फाइकस आरिकूलाटा (मोरेसी) हिन्दी नाम : तिरमल – पूर्वी हिमालय तथा पूर्वी भारत के अनेक राज्यों जैसे असाम, मणिपुर, बिहार और ओडिशा मे मिलने वाला यह पौधा 1.5– मी. ऊंचाई का होता है । इसकी छाल से डोरियाँ बनाई जाती हैं।

फुरकेरिया फोएटिडा (एमारेलिडेसी) हिन्दी नाम : मरिसस रस्सी– दक्षिण आमेरिका का यह छोटा पौधा पूर्वी एवं दक्षिण भारत में मिलता है। पोधे के पत्ते रेशे से चटाई, थैला आदि बुना जाता है।

जिरारडियाना डाइवर्सिफोलिया (अर्टिकेसी) हिन्दी नाम : बीछूया– पूर्वी हिमालय तथा असम में मिलने वाला यह छोटा पौधा लगभग 1मी. तक ऊंचाई का होता है। इस पौधे के तना से प्राप्त रेशे से रस्सी बनाई जाती है जो पैकिंग और बुनाई आदि के काम में लायी जाती है।

हिबिसकस मूटाबिलिस (मालवेसी) हिन्दी नाम : शलपराय, बंगला नाम : थुल पाद्म– चीन देश के यह आकर्षक झाड़ी जैसा पौधा भारत के अधिकतर बगीचों में लगाया जाता है। इसके का तने के रेशों से से रस्सी और डोरियाँ बनती हैं।

किडिया कालीसिना (मालवेसी) हिन्दी नाम : पोला – उष्णकटिबंधीय वन और भारत के दक्षिण राज्यों मे अधिकतर स्थानों पर यह आकर्षक पौधा पाया जाता है जो 1–2 मी. तक ऊंचाई का होता है। पौधे की छाल के रेशों से डोरियाँ बनती हैं।

लाजेरस्ट्रोमिया स्पेसिओसा (लिथरेसि) हिन्दी नाम : जारूल – अधिकतर बगीचा में सजावट के लिये लगाया जाने वाला यह आकर्षक पौधा 1–3 मी. तक ऊंचाई का होता है। पौधे की छाल से प्राप्त हुआ रेशा मुद्रण कागज बनाने में उपयोगी होता है।

लुफा एक्यूटेंगुला (कुकुरबिटेसी) हिन्दी नाम : काली–तोराई बंगला नाम : झिनगा – अधिकतर सब्जी के रूप में प्रयोग किये जाने वाले इस पौधे के सूखे फल से रेशा निकाला जाता है जिसे लोग स्नान के वक्त स्पंज के तरह प्रयोग करते हैं।

मार्सडेनिया टेनासीसीमा (एसक्लेपिएडेसि) हिन्दी नाम : जीटी– पूर्वी एबं मध्य–भारत मे अधिकतर स्थान पर यह झाड़ी जैसा पौधा लगभग 1मी. तक ऊंचाई का होता है। इसकी छाल के रेशों से मजबूत धागा बनाया जाता है जो मछुआरों के जाल तैयार करने तथा धनुष का तार बनाने में प्रयोग किया जाता है।

मोरिंगा ओलिफेरा (मोरिंगेसि) हिन्दी एवं बंगला नाम : सजना– पूर्व, मध्य एबं दक्षिण भारत के खेतो एवं बागों मे यह पौधा लगाया जाता है, इसके फल की सब्जी बनती है एवं छाल के रेशों से मुद्रण कागज तैयार किया जाता है।

पेंडानस फुरकाटस (पेंडानेसी) हिन्दी नाम : रन–केवा– पूर्वी हिमालय एबं पश्चिम समुद्र–तट पर पाये जाने वाला यह पौधा झाड़ी जैसा होता है। इसके पत्ते के रेशों से चटाई बनाई जाती है।

फोइनिक्श पालूडोसा (एरिकेसी) बंगला नाम : हेताल – पश्चिम बंगाल, ओडिशा राज्यों के समुद्र–तट पर पाये जाने वाला यह झाड़ी जैसा पौधा लगभग 1मी. तक ऊंचाई का होता है। इसके पत्ते के रेशों से डोरियाँ तथा चटाई तैयार की जाती है।

कटे पेड़ बंजर धरा, जहरीला है जल ।
आज बिताना है कठिन कैसा होगा कल ?

गठिया (आर्थिराइटिस और रूह्मेटिज्म) के निदान में सहायक औषधीय पौधे

कुलदीप सिंह डोगरा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, नोएडा

गठिया (आर्थिराइटिस और रूह्मेटिज्म) उन असंख्य बीमारियों में से है जो मनुष्यों में जोड़ो को, हड्डियों और लीगामेन्ट को प्रभावित करती हैं तथा साथ ही उनमें दर्द उत्पन्न करती हैं। गठिया अकेले जोड़ो को ही प्रभावित नहीं करता है। अपितु ये शरीर में अन्य नाड़ियों और नसों पर भी प्रभाव डालता है, इसके कई प्रकार है उदाहरण के तौर पर किर्बोरसटेस एक प्रकार की गठिया ही है, जिसमें नाड़ियों में दर्द होता है। इसके अलावा बुरसरिस भी गठिया की ही किस्म है, जिसमें दो नाड़ियों के बीच में छोटा सा छिद्र बन जाता है जो दर्द उत्पन्न करता है। गाऊट एक प्रकार की अति पीड़ादायक आर्थिराइटिस ही है। यह शरीर में अनियमित यूरिक एसिड मैटाबोलिज्म के कारण होता है। गाऊट महिलाओं की तुलना में पुरूषों में नौ गुणा ज्यादा होता है।

इस प्रकार आर्थिराइटिस और रूह्मेटिज्म दोनो ही मनुष्य में काफी गंभीर बीमारी है, जो बढ़ती आयु के साथ गम्भीर होती जाती है। एलोपैथी (नई औषधीय प्रणाली) के अलावा आयुर्वेद (पुरानी औषधीय प्रणाली) में बहुत से ऐसे पौधों का वर्णन किया गया है, जो इन बीमारियों से राहत पहुँचाने में सक्षम हैं। ये भी सत्य है कि पौधों के गुणकारी तत्व इन बीमारियों को दूर करने में काफी उपयुक्त है और साथ ही एलोपैथिक दवाओं से सस्ते भी हैं।

सम्पूर्ण विश्व में 80 प्रतिशतमनुष्य औषधीय पौधों को विभिन्न व्याधियों के निदान में प्रयोग में लाते हैं,(टेलर, 1986)। सबसे पहले प्रमाणित औषधीय पौधों का वर्णन वैदिक काल में (3500 से 1800 ई. पू.) में मिलता है। हमारी वैदिक पुस्तकें (ऋगवेद, 4500–1600 ई.पू; अर्थववेद,1500 ई.पूक्; उपनिषद, 1000–600ई. पू.) और साथ ही पौराणिक आयुर्वेदिक पुस्तकें जैसे कि 'चरक संहिता' (1000–800 ई.पू.) और साथ ही कुछ विद्वानों द्वारा लिखित (पतंजली, नार्गाजुन, चर्करदतु, संर्गधर, बन्गसेन (500–100 ई.पू.) पुस्तकें पौधों की औषधीय गुणवत्ता को प्रमाणित करती है।

गठिया एक बहुत ही गंभीर बीमारी है जिसको दूर करने के लिए आयुर्वेद में बहुत सारे पौधों का वर्णन है। बीमारी की गंभीरता और पिछले कुछ वर्षो में भारत में हुए शोध को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर गठिया रोग से निदान देने वाले कुछ विशेष पौधों का विस्तार पूर्वक विवरण दिया जा रहा है। यह सारे पौधे उत्तर भारत में प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। इन सब पौधों में से कुछ को भारतीय वनस्पति उद्यान नोएडा की औषधीय वाटिका में भी लगाया गया है। गठिया के निदान में सहायक पौधों का वर्णन इस प्रकार से है।

क्रम संख्या	पौधे का वनस्पतिक नाम/कुल	पौधे का हिन्दी नाम	फल और फूल का समय	पौधे का भाग	पौधे के प्रयोग की विधि
1	*एबरस परिक्टोरीयस* (फेबेसी)	चिरमित	मई – अगस्त	पत्ते, जड़, बीज	जड़ का रस खाली पेट लेने से गठिया ठीक होता है। बीज की लेई जोड़ो के बीच में कसाव को कम करती है। जड़ और पत्तों का काढ़ा पीने से गठिया में आराम मिलता है।
2.	*अबुटिलान इण्डिकम* (मालवेसी)	कन्घई	अक्टूबर – दिसम्बर	पूर्ण पौधा	गठिया वाली जगह पर इसके पत्तों के रस से मालिश करने से आराम मिलता है। बीज के लेप से दर्द में आराम मिलता है।

3.	*अकेशिया कटेचू*	(फेबेसी)	बबूल, खैर, कत्था	मई – जुलाई	जड़	जड़ की लेप जोड़ों पर लगाने से गठिया से राहत मिलती है।
4.	*एकैरेन्थस असपरा*	(अमरेन्थेसी)	चिरचिरा, लतजिरा	मई – अक्टूबर	पूर्ण पौधा	पत्तों की राख को आधा चम्मच दिन में 2 बार लेने से गठिया में राहत मिलती है। जड़ के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से आराम मिलता है।
5.	*एस्परेगस ऑफिसीनेलिस*	(लिलिऐसी)	हलम, नागदोन	अक्टूबर – जनवरी	पूर्ण पौधा	सम्पूर्ण पौधे से औषधीय टिन्चर बनाई जाती है। इसको गठिया से संबंधित जोड़ों के दर्द को ठीक करने में प्रयोग किया जाता है। पौधे का काढ़ा भी गठिया को दूर करता है।
6.	*अजाडिरेक्टा इण्डिका*	(मिलिऐसी)	नीम, नींब	फरवरी – मई		फल, पत्ते और बीज कई आदिवासी समूह इसके बीजों के तेल की मालिश गठिया के दर्द के लिये करते हैं। पत्ते और फल भी गठिया रोग को कम करने में सहायक हैं।
7.	*बारलेरिया क्रीसटेटा*	(एकेन्थेसी)	झिनटिका झिती	जुलाई – अक्टूबर	पत्ते, जड़	भील और गरेसिया समूह के आदिवासी इसकी जड़ के लेप और गर्म किये हुए पत्ते गठिया को ठीक करने के लिए प्रयोग करते हैं।
8.	*बोरहाइविया डिफ्यूजा*	(निक्टेजिनेसी)	पुनर्नवा	पूर्ण वर्ष	पत्ते, जड़	गठिया होने पर इसके पत्तों और जड़ का जूस दिया जाता है।
9.	*कैलोट्रॉपिस प्रोसेरा*	(एस्कलपिडियेसी)	अक, अकीड़ा	मार्च – जून	पत्ते, जड़ मदार	ताजे पत्ते पट्टी की तरह गठिया वाली जगह पर लगाए जाते हैं। जिससे आराम मिलता है। जड़ का लेप गठिया रोग से निदान में सहायक है।
10.	*केन्नाविस सटाईवा*	(केनाबिऐसी)	भांग, चरस, गाजा	जुलाई – सितम्बर	पत्ते	इसके पत्तों का काढ़ा सरसों के तेल में मिलाकर गठिया ग्रस्त हिस्से पर लगाने से आराम मिलता हैं।

11.	*कैशिया आक्सीडेन्टोलिस*	(फेबेसी)	कशोन्दि	जुलाई – अगस्त	पत्ते	गर्म पानी में इसके पत्तों को उबालकर नहाने से गठिया रोग में काफी राहत मिलती है।
12.	*सेन्टेला एशियाटिका*	(एपिऐसी)	ब्राह्मी	जुलाई – अगस्त	पूर्ण पौधा	पूरे पौधे को पकाकर खाने से गठिया से राहत मिलती है। इसके 2 पत्ते रोजाना चबाने से 10 दिन में गठिया का दर्द कम हो जाता है।
13.	*चिनोपोडियम एल्बम*	(चिनोपोडियेसी)	बधुवा/ साग	मार्च – जून	तना	इसके तने से बनी लेप को जोड़ों पर लगाने से गठिया रोग से आराम मिलता है।
14.	*धतूरा एलबा*	(सोलेनेसी)	धतूरा, काला धतूरा	जून – सितम्बर	पत्ते, बीज, फल	पत्तों के रस और बीजों के लेप को सरसों के तेल में घोलकर लगाने से गठिया रोग में राहत मिलती है।
15.	*एक्लीपटा प्रोसट्रेटा*	(एस्टरेसी)	भृंगराज भांग्रा	अगस्त –सितम्बर	पूर्ण पौधा	पौधे के रस की मालिश करने से गठिया रोग दूर होता है। सरसों के तेल से इसके पत्तों की लेप मिलाने से बना लोशन जोड़ों के दर्द को दूर करने में सहायक है।
16.	फाइकस बैन्घालेन्सिस	(मोरेसी)	बड़, बरगद	मार्च – अक्टूबर	बीज और मदार	मदार के रस और बीजों के लेप से बना हुआ घोल जोड़ों के दर्द से निजात दिलाता है।
17.	*ग्लोरीओसा सुर्पबा*	लिलिऐसी	कालीहारी, खीगानी	अगस्त – अक्टूबर	जड़ और टयूबर	टयूबर और जड़ की लेई को सरसों के तेल में तलकर लगाने से गठिया रोग से काफी राहत मिलती है।
18.	*मिलोटस फिलिपन्सिस*	(यूफोर्बिऐसी)	कामल, रूला	अप्रैल – अक्टूबर	पत्ते, जड़, फूल	इसके पत्ते और फूलों के रस को शहद में बराबर मात्रा में बनी हुई 2 ग्राम लेप को दिन में एक बार लेने से गठिया रोग दूर हो जाता है।
19.	*मोरिंगा कोनगई*	(रूटेसी)	कड़ी पत्ता, करी पत्ता	मार्च – जून	पत्ते	गठिया होने पर इसके पत्तों का काढ़ा पीने से जोड़ों के दर्द में काफी आराम मिलता है।

20.	*रिसिनस कम्यूनिस*	(यूफोर्बिऐसी)	अरंड	मार्च – मई	पत्ते, जड़, बीज	इसके तेल की मालिश करने से गठिया रोग में राहत मिलती है। इसके पत्तों को पानी में उबालकर उससे स्नान करने से भी गठिया का दर्द काफी कम हो जाता है।
21.	*टर्मिनेलिया अर्जुना*	(कोम्ब्रिटेसी)	अर्जुना	अप्रैल – मई	छाल	इसकी छाल से बना हुआ काढ़ा दिन में एक बार पीने से गठिया रोग में आराम मिलता है।
22.	*यूरेना लेबोटा*	(मालवेसी)	बचीता	अप्रैल – अगस्त	पूर्ण पौधा	इसके पौधे को तिल के तेल में उबाला जाता है और बने हुए काढ़े से जोड़ों के दर्द वाली जगह हल्की मालिश की जाती है। इससे गठिया रोग से राहत मिलती है।
23.	*वाईटकस निगेण्डू*	(बरबिनेसी)	सिन्दोरी निरगुयन्दा	मार्च – अगस्त	पत्ते	गर्म किए हुए पत्तों का लेप सूजे हुए जोड़ो पर लगाया जाता है।
24	*विधानिया सोमनिफेरा*	(सोलेनेसी)	अश्वगन्धा	मार्च – जून	पत्ते	इसके पत्तों को गर्म करके जोड़ों पर लगाने से गठिया में राहत मिलती है।

समृद्ध देश के हैं ये लक्षण ।
अधिक उपज और वन संरक्षण ।।

पत्ती – निकोबारी :*इकलिप्टा प्रोस्ट्रेटा*

फल – निकोबारी :*एलिफेन्टोपस स्केबर*

13. सिरदर्द

जड़ – ओंगी :*केलोट्रोपिस जाइगेसिंया,* निकोबारी : *बोरहाविया डिफ्यूजा, करक्यूलेगो आरकोआइडिस, वाइटेक्स ट्राइफोलियाजारवा : एकाइरेन्थस बाइडेन्टेटा,अरिस्टोलोकिया टगाला* शोपेन :*रॉवल्फिया सुमात्राना*

पत्ती – ओंगी :*केलोट्रोपिस जाइगेसिंया, क्लिरोडेन्ड्रम विसकोसा, क्राइपटोलेपिस बुकनन,*

निकोबारी :*ग्लाइकोसमिस आरबोरिया, हरनेनडिया पल्टेटा, आइपोमिया पेस–केपरे, इकसोरा ब्रूनीसेन्स, ट्रेमा टोमेन्टोसा, बोरहाविया डिफ्युजा, हिपटिस साइलेन्स, पेपरोमिया पीलोसीडा, वाइटेक्स ट्राइफोलिया, वेडेलिया बाइफ्लोरा,* जारवा :*आरडिसिया सोलेनेसिया, अरिस्टोलोकिया टगाला* शोपेन :*बकोपा मोनेराई, ट्राइकोसेन्थस ब्रेक्टेटा*

14. नेत्र संक्रमण

दूध – निकोबारी :*आरजीमोन मैक्सीकाना, केलोफाइल्लम इनोफिलम*

पत्ती – ओंगी :*ब्रराइनिया रिटूसा, मेरिमिया पेल्टेटा, स्कोपेरिया डल्सिस, स्ट्रेब्लस एस्पर,* निकोबारी :*केथेरेन्थस रोजियस, एजीरेटम कोनिजोइडिस, ग्लोबा मैरन्टिना,*

15. यकृत रोग

जड़ – निकोबारी : *एफेनामिक्सिस पोलिस्टाइका, बोहराविया डिफ्यूजा,* जारवा :*कुरकुलिगो आरकोइडिस*

छाल – निकोबारी : *बेरिंगटोनिया रेसीमोस*

पत्ती –जारवा :*इकलिप्टा प्रोस्ट्रेटा, ग्लाइसिमिया अरबोरिया*

बीज– निकोबारी :*सिजलपिनिया बॉण्डुक*

16. कुष्ठ रोग

जड़ –जारवा:*एनाकार्डियम ऑक्सीडेन्टल, केलोट्रोपिस जाइगेन्टिया, साइनोमेट्रा रेमिफ्लोरा*

पत्ती –जारवा : *हिपैटिस साउलेन्स*

17. गलसुआ

पत्ती – ओंगी :*आरडिसिया सोलेनेसिया, डिस्किडिया बेंग्लेंसिस*

18. दंतशूल

छाल – ओंगी :*लॉनिया कोरोमण्डलिका, मोरिण्डा सिट्रीफोलिया*

शाखा – निकोबारी :*पोंगेमिया पिन्नेटा, इट्रेब्लस एस्पर, जेन्थोजाइलम ओवेलिफोलियम,* जारवा :*जेन्थोजाइलम टगाला, बारलेरिया प्रियोनाइटिस, आरोजाइलम इण्डिकम* शोपेन :*सिम्पलोकोस रेसीमोसा*

पत्ती – निकोबारी : *एडीनोसटिमा लेविनीया*

फल – ओंगी :*स्पाइलेन्थस पेनिकुलेटा,* जारवा :*एलेफेन्टोपस स्केबर*

बीज– निकोबारी –*जेन्थोजाइलम ओवेलिफोलियम*

19. पाइल्स

जड़ – शोपेन :*कुरकुलिगो ओरकोइडस*

कन्द –जारवा :*डाइस्कोरिया बल्बीफेरा*

पत्ती – ओंगी :*पेडेरिया स्केन्डस, फाइलेन्थस विरगेटस,* जारवा : *होमोनिमा रिपेरिया* शोपेन :*एजिरेटम कोनिजोइडिस, एमेरेन्थस स्पाइनोसस*

फल – निकोबारी :*सिजाईजियम क्यूमिनी,* जारवा :*मेसूआ फेरिया*

20. चर्मरोग

राइजोम– निकोबारी : *लायगोडियम फ्लैक्सूयोसम*

जड़ – अण्डमानी :*एमेरेन्थस स्पाइनोसस* शोपेन :*केलोट्रोपिस गाइगेंटिया*

तना– अण्डमानी :*एम्पेलोसाइसस बारबेटा,* शोपेन : *साइकस रेपेन्स*

दूध– शोपेन :*केलोट्रोपिस गाइगेंटिया*

पत्ती – अण्डमानी :*केलोफाइल्लम एनोफिल्लम, एमेरेन्थस स्पाइनोससय* ओंगी :*सिजलपीनिया बॉण्डुकय निकोबारी : कैसिया अलेटा, यूफोर्बिया अटोटा, यूफोर्बिया हिर्टा, टरमीनेलिया कटप्पा, सिजलपीनिया बॉण्डुक, एक्लफा इण्डिका, एजिरेटम कोनिजोइडिस, हिपैटिस साउलेन्सय* शोपेन :*केसिया ऑक्सीडेन्टालिस*

बीज – अण्डमानी :*साइनोमिट्रा रेमिफ्लोरा,एनाकार्डियम ऑक्सीडेन्टेल,* निकोबारी :*जेट्रोफा करकस, जेट्रोफा गोसीपीफोलिया, पोन्गामिया पिन्नेटा,* शोपेन :*थसपेसिया पोपुलनिया, ग्लोचीडिओन केलोकारपम*

21. जोड़ दर्द

कन्द – ओंगी :*डाइस्कोरिया पेन्टाफाइला*

छाल –जारवा : *एफिनामिक्सिस पोलीस्टाइका, आरडीसिया सोलनेसिया*

जड़ –जारवा :*बारलेरिया प्रियोनाइटिस*

तना– ओंगी :*एलिफेन्टोपस एस्पर,* जारवा :*कोल्डेनिया परोकुम्बेंस*

पत्ती – ओंगी :*ड्रेसिना अंगुस्टीफोलिया, एलिफेन्टोपस एस्पर, हेडियोटिस वेस्टेटा, हिप्टेज बेंगालेन्सिस,* निकोबारी :*क्लिरोडेन्ड्रम इनरमी, करेटेवा रिलिजियोसा, यूफोर्बिया अटोटा, मीलेस्टोमा मलाबाथ्रीकम, प्रेमना आब्ट्युसीफोलिया, स्कीवयोला सिरिसीया, साइजिजियम समारेन्जेन्स, वाइटेक्स ट्राइफोलिया, वाइटेक्स निगुण्डो,*जारवा :*केलोफाइल्लम एनोपिल्म, कोल्डेनिया परोकुम्बेंस, क्राइण्टोलिपिस बुकनेनिया*

बीज– ओंगी : *जेट्रोफा करकस* निकोबारी :*पोन्गामिया पिन्नेटा*

22. इंफर्टिलिटी(प्रजनन निरोध)

राइजोम– निकोबारी :*कोस्टस स्पीसियोसस,*

फल – निकोबारी :*इरीओगलॉसस रूबीजीनोसस*

पत्ती – निकोबारी : *स्टीनोक्लीना प्लेसट्रिस, एकाइरेन्थस एस्परा*

23. जननांग रोग

कन्द –जारवा :*डाइस्कोरिया बल्बीफेरा*

जड़ – निकोबारी :*एमेरेन्थस स्पाइनोसा, केलोफिलम एनोफाइल्लम, कुरकुलिगो आरकोइडिसय*जारवा : *होमोनिमा रिपेरियाय* शोपेन :*डोनेक्स केनीफोर्मिस, फाइलेन्थस यूरिनेरिया*

तना– शोपेन :*फाइलेन्थस यूरिनेरिया*

24. वमन कारक

पत्ती – निकोबारी :*ड्रेजिया वोलूबीलिस, पेडेरिया स्केन्डेन्स*

फल – निकोबारी :*केलोफाइल्लम एनोफिल्लम, ट्राइकोसेन्थस ब्रेक्टेटा*

25. वमनहर

छाल – ओंगी :*मेकेरेन्गा इण्डिका*

जड़ – निकोबारी :*सिडा एक्यूटा*

पत्ती – ओंगी :*एमेरेन्थस स्पाइनोसस,* निकोबारी :*सिडा एक्यूटा*

26. ज्वर, मलेरिया

जड़ – निकोबारी :*एरिस्टोलोकिया टगाला, बारलेरिया प्रियोनाइटिस, स्कोपेरिया डलसिस, वाइटेक्स निगुण्डो,* जारवा :*स्ट्रेबिलस एस्पर,* शोपेन :*एल्सटोनिया कुर्जी, एल्सटोनिया मैकरोफिला, रॉवल्फिया सुमात्राना*

छाल – ओंगी :*पोंगेमिया पिन्नेटा,* निकोबारी :*क्लिरोडेन्ड्रोन विस्कोसम,जेन्थोजाइलम ऑवेलिफोलियमय* शोपेन :*एल्सटोनिया कुर्जी, एल्सटोनिया मैक्रोफिला, इरिओग्लोसम रूबीजीनोसम*

ओडिशा के आदिवासियों में वनस्पतियों से संबंधित कुछ प्रचलित लोक–विश्वास

हरीश सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

भारत के आदिवासी बाहुल्य राज्यों मे ओड़िशा राज्य का अग्रणी स्थान रहा है। राज्य के मयूरभंज, सुंदरगढ, मल्कांगिरी, कोरापुट, कालाहांडी, क्योंझार, बालंगीर, अंगुल, देवगढ, बरगढ, आदि जनपदों के सुदूरवर्ती जंगली क्षेत्रों में आदिवासियों की 62 प्रमुख जातियाँ तथा 112 उप–जातियाँ सदियों से निवास करती आ रही हैं, जिनमें से मुख्य रूप से कोंध, गोंड, संताल, कोल्हा, मुंडा, साओरा, शबर, भोट्टडा, किसान, परोजा, ओरॉव की जनसंख्या लाखों में है। वर्ष 2006 से 2014 तक ओडिशा राज्य के विभिन्न जिलों के लोक वानस्पतिक अध्ययन के दौरान लेखक द्वारा अनुभव किया गया कि ये लोग सदियों से जंगल व जंगलों के निकट निवास करने के कारण उन जंगलों से प्राप्त होने वाले खाद्य, औषधि, रंग, चारा, ईंधन, रेशा, काष्ठ आदि का उपयोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु करते आ रहे हैं। यही नहीं, इन लोगों का इन जगलों से आदि काल से ही धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक संबंध रहा है। इन जंगलों को आज भी ये लोग अपनी अमूल्य धरोहर व जीवन यापन का प्रमुख स्रौत मानते हैं। इन पेड़–पौधों से केवल इनकी जीवन की आपूर्ति का संसाधन ही प्राप्त नहीं होता, अपितु इन वनस्पतियों पर इनकी पूर्ण आस्था तथा विश्वास भी है। ये लोग बहुत से पेड़–पौधों को अपने धार्मिक व सांस्कृतिक विधि विधानों में इस विश्वास के साथ प्रयुक्त करते हैं कि उनके लिये शुभ व फलदाई सिद्ध होते हैं। इन पेड़–पौधों के विभिन्न भागों को पूजा–पाठ, शादी–विवाह, जन्म–मृत्यु, रिति–रिवाजों, धार्मिक उत्सव आदि में प्रयुक्त किया जाता है। इन वनस्पतियों का उपयोग कुछ तांत्रिक गुरूओं (भरारा, गुणी) के द्वारा भी क्षेत्र में लोगों के भूत–पिचाश, दृष्टी दोष, नजर उतारने, वशीकरण करने, किसी का शुभ– अशुभ करने, शोषण करने, मानसिक संतुलन–असंतुलन करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम दृष्टया इन पौधों के उपयोग देखने में चमत्कारिक लगते हैं, क्योंकि इन पौधों या पौधों के भागों को मात्र शरीर में पहनने, छूने, उगाने, भण्डारण करने या शरीर में बाहर से लेप करने से ही कई रोग व्याधियों, विकृतियों का उपचार के साथ–साथ इन्हें भूत–प्रेत भगाने, बुरी नजर उतारने, साँप भगाने, कृषि उत्पादन बढ़ाने, पारिवारिक कलह मिटाने, सुख शांति चाहने, लड़का पैदा करने, सुन्दर बच्चा चाहने, प्रसव को तुरन्त व सरल करने, गर्भ रोकने, अग्नि पैदा करने, वशीकरण करने, ग्रहों को शांत करने, भूख बढ़ाने तथा कीट पतंगों को मारने में प्रयोग किया जा रहा है। किन्तु इन पौधों का प्रयोग यहाँ के आदिवासियों व मूल निवासियों द्वारा सदियों से पारम्परिक रूप में पूर्ण विश्वास से किया जा रहा है और इनके अचूक, प्रभावी, चमत्कारिक व अनुकूल परिणाम के कारण आज की नई पीढ़ी भी इन प्रयोगों का अनुसरण कर इनसे लाभ अर्जित कर रही हैं। लेखक को भी ओडिशा राज्य के विभिन्न जिलों के लोक वानस्पतिक अध्ययन के दौरान इस प्रकार के अनेक पेड़–पौधों से संबंधित लोक विश्वास व उनके नमूनों को संग्रहित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इनमें से 63 वनस्पतियों की सही वैज्ञानिक पहचान करने के पश्चात उनसे संबंधित लोक विश्वासों को इस लेख में उनके वानस्पतिक नाम के वर्णमाला के अनुसार क्रमबद्ध कर पौधों के स्थानीय नाम के साथ ही उनके उपयोग की विधि के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. अपमारंगा (*अकैरेन्थ्स एस्परा*)– देवगढ़ जिले में आदिवासी समुदाय इस पौधे की जड़ को साँप के काटने पर पीड़ित को खिलाते व काटने वाले स्थान पर लेप करते हैं, ऐसा भी माना जाता है कि इसके तने के टुकड़ों की माला को पीलिया रोग से पीड़ित रोगी को पहनाने से रोग ठीक हो जाता है। माना जाता है कि इसकी पत्तियों को थोड़े से चावल और हल्दी के साथ चौ–रास्ते पर फेंक देने मात्र से बुखार ठीक हो जाता है।
2. बच्छ/गद/कृष्णा बच्छ/घुड़ बच्छ/देवनासन *(एकोरस कैलेमस)* – मयूरभंज जिले में आदिवासियों की मान्यता है कि इस पौधे की जड़ को बच्चों के गले में धागे के साथ बांधने से भूत–प्रेत की छाया व बुरी नजर का असर खत्म हो जाता हैं। इसकी जड़ को पीसकर उसके लेप को बच्चे के माथे लगाने से भी इसी प्रकार का फायदा होता है। बालंगीर जिले में आदिवासियों की मान्यता है कि जड़ को सूखाकर घर में रखने से भूत–प्रेत नहीं आते हैं ।
3. हल्दू/कोइमो/कुरूम*(एडिना कार्डिफोलिया)* – मयूरभंज जिले के आदिवासियों की मान्यता है कि इस पौधे की कोमल पत्तियों के लेप को माथे व सिर में 2–3 बार लेपने से रात्रि को कम दिखने वाले मरीज को भी दिखाई देने लगता है।
4. रायश्री*(एल्पीनिया कैलकाराटा)* – बालंगीर जिले में मान्यता है कि इसकी सूखी लकड़ी को घर ले जाने मात्र से परिवार के सदस्यों में झगड़ा शुरू हो जाता है।

5. काँटा साग/जानुमाड़ा (*एमारेन्थस स्पाइनोस्स*) – मयूरभंज जिले में आदिवासियों की मान्यता है कि इसकी जड़ को शनिवार को खोदकर किसी भी व्यक्ति के माथे पर रखने मात्र से वह रात भर नहीं सो पाता है।

6. इच्छाबर/जंगली डाक/पनिया लता (*एम्लिोसिस्सूस लेटिफोलिया*)– मयूरभंज जिले में इसकी बेल को कमर में बांध कर खेत में बीज बोने मात्र से उस फसल के उत्पादन में अपेक्षाकृत वृद्धि हो जाती है।

7. भुई लिम्बा, कालमेघ, चिरैता (*एंड्रोग्रॉफिस पैनिकुलाटा*) – अंगुल जिले में इसकी पत्तियों के रस को साँप के काटे व्यक्ति को पिलाने से अगर वह मीठा लगता है तो काटने वाला साँप के विषैला होने की पुष्टि कर तदोपरान्त उसका उपचार करते हैं।

8. बुधाधारक (*अग्रेरिया नर्वोसा*) – मयूरभंज जिले में इसके पत्ते को हरे तरफ से किसी भी फोड़ा पर बांधने से वह फोड़ा दब जाता है जबकि सफेद तरफ से बांधने से उस फोड़ा से सारा मवाद (चने) बाहर निकाल देता है।

9. ईश्वरजटामूल/दृष्टिमूल/दिस्टीमोर/सर्प चक्री (*एरिस्टोलोचिया इंडिका*)– मयूरभंज जिले में इसके पौधे से एक विशेष प्रकार की गन्ध आने के कारण इस पौधे के आस पास साँप नहीं आते हैं इसलिए इस पौधे को घर के पास लगाते है तथा इसकी जड़ को काली मिर्च के साथ खिलाने से साँप का जहर भी कम हो जाता है।

10. पनौरी/हंसलता (*एरिस्टोलोचिया रिन्नोन्स*) देवगढ़ जिले में इसकी जड़ों को भूत–प्रेत को भगाने के लिए तांत्रिक द्वारा प्रयोग किया जाता है।

11. नीम (*एजाडिरिक्टा इंडिका*)– बालंगीर जिले में मान्यता है कि घर में इसकी पत्तियॉ व लकड़ी जलाने से माताराानी की शांति होने के कारण परिवार के सभी सदस्यों को चेचक रोग प्रभावित नहीं करेगा। पत्तियों को धान की बाली के साथ माला बनाकर नवंबर (मार्गशीश) महीने के हर गुरुवार को दरवाजे की चौखट पर बांधने से घर में कोई रोग प्रवेश नहीं करता है।

12. लालकुडी/लाल्कुली (*बायोफायटम रेनवार्डिटाई*) – बालंगीर जिले के आदिवासियों में मान्यता है कि इसके पौधे को किसी भी काम के लिए जाते समय जेब में रखने से कार्य शुभ तथा सफल होता है।

13. ताड़ (*बोरेसस फ्लेबेलीफर*) – अंगुल जिले में मान्यता है कि इसके नर पुष्प क्रम को पीसकर महिला को मासिक धर्म के आखिरी दिन खाली पेट 50 ग्राम खिलाने से वह एक वर्ष तक गर्भ धारण नहीं करेगी।

14. कस्सी (*ब्रिडेल्लिया रेट्यूसा*) – देवगढ़ जिले में इसके कांटे को भूत–प्रेत को भगाने के लिए तांत्रिक द्वारा प्रयोग किया जाता है।

15. फोर्सा/पलास/मुर्द (*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*) – मयूरभंज जिले में इसकी तीन कोमल पत्तियों को दूध के साथ दो माह की गर्भवती महिला को खिलाने मात्र से पैदा होने वाले बच्चे के बहुत सुंदर पैदा होने की मान्यता है।

16. बुधेल/ बादेल लह (*ब्यूटिया सूपर्वा*) – बालंगीर जिले में सूखे सफेद फूलों को काली मिर्च पाउडर के साथ 7 दिनों तक खिलाने से निःसंतान महिला का मासिक धर्म चक्र विकार ठीक होकर हो जाता है।

17. अकन्द–बिन्दु (*सिस्सेम्पिलोस पेरेरिया*) – अंगुल जिले में इसके 7 पत्तियों को 7 काली मिर्च के साथ पीसकर महिला को मासिक धर्म के अन्तिम दिन खिलाने से वह उस माह गर्भ धारण नहीं करेगी, अगर इसे तीन माह तक की गर्भवती महिला को पिलाया जाये तो उसके भ्रूण पतन हो जाता है।

18. करधा/कार्गीलुंग/पोडासी (*क्लिसेन्थस कोल्लिनस*)– मयूरभंज जिले में हरी टहनियों को शनिवार या मंगलवार को एकत्रित कर धान के खेत के चारों तरफ रोपने मात्र से ही हानिकारक कीट–पतंगें या तो मर जाते है या भाग जाते हैं।

19. नारंगी/भारंगी/बुगा बरसी (*क्लेरोडेन्ड्रॉन इंडिकम*)– मयूरभंज जिले में मान्यता है कि इसकी पत्तियों को पीसकर तेल के साथ मिलाकर कपड़े के एक रस्से (नाड़ा) लपेट कमर में बांधने मात्र से एक प्रकार का त्वचा रोग (कुन्टा दौड़ी) ठीक हो जाता है।

20. अपराजिता (*क्लिटोरिया टरनेटिया*) – मयूरभंज जिले में इसकी जड़ को लहसुन के साथ पीसकर एक कपड़े में बाँधते हैं और इसे एक बार ही सूँघने से सिरदर्द, जुकाम व सिर चकराना ठीक हो जाता है इस उपचार के दौरान छींक के साथ नाक से थोड़ा सा पानी बाहर आता है। इसके जड़ को सफेद धागे के साथ गर्भवती औरत के कमर में बांधने से ही प्रसव तुरन्त हो जाता है।

21. अझारमानी (*क्रोटोलेरिया पेल्लिडा*)– मयूरभंज जिले में पत्तियों के रस को पानी के साथ मिलाकर छिड़कने से घर के अन्दर घुसा साँप तुरन्त बाहर निकल आता हैं।

22. जंगल छानी (*क्रोटोलेरिया स्पेक्टाबिलिस*)– मयूरभंज जिले में पौधे को घर के पास उगाने मात्र से उसके आस पास साँप कभी नहीं आते हैं।

23. पुतुला/अग्नि दारू/मसुन्डी (*क्रोटोन रॉक्सब्रघाई*)– मयूरभंज जिले में तने की एक सूखी लकड़ी (3–4 इन्च) को एक दूसरे लकड़ी पर बनाये छिद्र में जोर से रगड़ने से आग पैदा की जाती है।

24. कृष्णा केदार/काली हल्दी (*कुर्कुमा कैसिया*)– देवगढ़ जिले में आदिवासी इसके प्रकंद को गोमूत्र के साथ पेस्ट बनाकर साँप के काटने पर लेपते हैं और अगर वह बेहोश है तो इसके रस को रोगी के नाक में डाला जाता है। यह माना जाता है कि इस पेड़ के पास साँप नहीं आता है।

25. निमुड़िया/अलगजड़ी (*कस्कुटा रेफ्लेक्सा*) – मयूरभंज जिले के आदिवासी समुदाय में मान्यता है कि इस पौधे को कलाई या टांग पर बांधने मात्र से ही सूखा रोग ठीक हो जाता है।

26. दूब घास (*सायनेडॉन डैक्टियॉन*) – मयूरभंज जिले में इसकी आठ पत्तियों को हाथ में मसल कर गोली नुमा बनाकर नाक के छिद्र में घुसाने मात्र से सिर दर्द तुरन्त ठीक हो जाता है, इस उपचार के दौरान थोड़ा सा गंदा रक्त बाहर निकलता है।

27. बान्दा/मदांग/मलांग (*डेन्ड्रोफ्थे फाल्काटा*) – देवगढ़ जिले में निवास करने वाले आदिवासी समुदाय में मान्यता है कि इसके तने के 7 टुकड़ों को एक ताबीज में भर कर पुरुष के बाएं और महिला के दाहिने हाथ पर बांधने से भूत–प्रेत व बुखार ठीक हो जाता है, इसे शनिवार या मंगलवार या सूर्य ग्रहण के दिन बांधने से कुष्ठ रोग भी ठीक हो जाता है। मयूरभंज जिले में महुआ या बैगुना के पेड़ पर से इस परजीवी पौधे को एकत्रित कर इसके एक छोटे टुकड़े को लाल धागे के साथ ताबीज की तरह औरत के बाँह में बांधने मात्र से वह संभोग के बाद भी गर्भ धारण नहीं करती है, जब कभी भी वह गर्भ धारण करना चाहे तो इस ताबीज को निकाल देते हैं।

28. सालपर्णी (*डेस्मोडियम गंगेटिकम*) – मयूरभंज जिले का आदिवासी समुदाय बुखार से निजात पाने के लिये इसकी जड़ को कमर में चारों तरफ बांधते हैं।

29. नाग नागुनी/नागजुड़ी/नागेश्वर/नाज नाजनी (*डेस्मोडियम मोटोरियम*) – मयूरभंज जिले क आदिवासियों में मान्यता है कि इसके पौधे को घर में लगाने मात्र से उस परिवार के सभी लोग शान्ति व प्रेम से रहते हैं व घर में कभी लड़ाई–झगड़ा नहीं होता है। मान्यता यह भी है कि यदि इस पौधे की ऊपर की दो हिलती हुई पत्तियों को शनिवार के दिन तोड़ते समय किसी व्यक्ति का नाम बोला जाये और उन पत्तियों को उस सम्बन्धित व्यक्ति को देने या खिलाने मात्र से ही वह उसके वश में हो जाता है।

30. कृष्णा पतनी (*डेस्मोडियम पुलचेल्लम*)– बालंगीर जिले में निवास करने वाले आदिवासी समुदाय में मान्यता है कि इसकी पत्तियां और जड़ के पाउडर को जंगल में जाने से पहले खाने मात्र से उसे साँप नहीं काटेगा और यदि साँप काट भी लेगा तो साँप तुरंत मर जाएगा ।

31. लेबनचूसी फल/शिव लिंगी (*डिप्लोसायक्लोस पालमैटस*)– मयूरभंज जिले में निवास करने वाले आदिवासी समुदाय की मान्यता है कि इसके बीजों को गाय के दूध (जिस गाय ने नर बछड़ा पैदा किया हो) के साथ 21 दिन तक खिलाने के पश्चात गर्भधारण करने वाली औरत को लड़का पैदा होता है।

32. मयूर झूटी/मयूर चूरा/मेजो झूटी/मोरतुंड़ा/ब्रह्मा दण्डी/आमलतिया/ कुकुर चुलिया (*एलिफेंटोपस स्कैबर*)– मयूरभंज जिले में आदिवासी इसकी जड़ को पूर्णमासी या अमावस्या को खोदकर बच्चों की कलाई /बाँह में बांधते हैं, उनकी मान्यता है कि इससे किसी भी प्रकार की बुरी नजर उतर जाती है।

33. जोड़ी गाछ/असोस्थो/अस्टो गाछ/पीपल (*फाइकस रेलिजियोसा*) – मयूरभंज जिले में आदिवासी समुदाय इसकी 2–3 पत्तियों को मोड़ कर शंकु के आकार बनाकर उसमें जलता हुआ कोयला रखते हैं कुछ देर बाद निचले पतले सिरे से निकलने वाले द्रव की 2–3 बूंदें कान में डालने से ही कान का दर्द तुरन्त ठीक हो जाता हैं।

34. नाहनुगुडिया/इसलागुडिया/आर्गा बाहा/बन्दरिया फूल/कलिहारी (*ग्लोरियोसा सुप्रबा*) – मयूरभंज जिले में आदिवासियों में इसकी जड़ को घर में लाने व रखने से परिवार के लोगों में निश्चित रूप से झगड़ा होने की धारणा है अतः इस जड़ को घर में लाना वर्जित है। प्रसव के समय जड़ को धागे के साथ औरत के कमर में बांधने से तुरन्त प्रसव हो जाता है किन्तु बच्चा पैदा होने के तुरन्त बाद इसे निकाल देना चाहिए अन्यथा बच्चा दानी भी बाहर निकल सकती है।

35. पेट्रागाछ/रेतना/मुड़ा (*हेलिक्ट्रेस इक्सोरा*)– मयूरभंज जिले में इसके मुड़े फलों को कुछ दिन के लिए तेल में भिगो देते हैं तथा उस तेल से दिन में 2–3 बार मालिश करने से जन्म से हाथ पैर मुड़े हुए बच्चे ठीक हो जाते हैं।

36. थर्थरी/जामला (*होमोनिया रिपैरिया*)– देवगढ़ जिले में पौधे को भूत प्रेत को भगाने के लिए तांत्रिक द्वारा प्रयोग किया जाता है।

37. बेंग तूनिया/ मदन मस्तक (*हेबेन्थस इन्नियास्परमस*)– देवगढ जिले में पौधे को तांत्रिक द्वारा जादू–टोने (तंत्र–मंत्र) के दौरान प्रयोग किया जाता है।

38. काला दहना (*लिया इंडीका*) – बालंगीर जिले में पौधे के तने (1–2 फीट) को घर में रखने मात्र से परिवार के सभी लोग वरिष्ठ सदस्य के नियंत्रण में रहते हैं।

39. ओडितुका/जोम–जोड़ी/बेड़ा जाल/ महाजाल/भूतेयेरि (*लायगोडियम फ्लेक्सोसम*)–देवगढ़ व मयूरभंज जिलों में जड़ को ओझा या गुरु द्वारा ताबीज के अंदर रख गले में पहना कर भूत–प्रेत भगाया जाता है।

40. महानीम/बैकन (*मिलिया एजिडार्क*)– मयूरभंज जिले में इसकी लकड़ी से भगवान जगन्नाथ जी की मूर्तियाँ बनाई जाती है इसलिए इस पेड़ के उपर या आस पास कभी भी आकाशीय ब्रज नहीं गिरती है।

41. किरकिची कांटा/कुन्दुरू जानुम (*मिमोसा हिमालयाना*)– मयूरभंज जिले में इसके तने के छोटे टुकड़े को ताबीज की तरह गले, बाँह या कमर में बांधने मात्र से बुरी नजर उतर जाती है।

42. नाजकुड़ी /लाज कुड़ी /जेनोप्पी (*मिमोसा पुदिका*)– बालंगीर जिले में जड़ के टुकड़े को एक सफेद धागे के साथ बांध कर प्रसव के दौरान महिला की कान पर रखने से प्रसव आसानी से हो जाता है। इसके पौधों को घर के पास लगाने से भूत–प्रेत घर के पास नहीं आते हैं। मयूरभंज जिले में जड़ को धागे के साथ गले में बांधने मात्र से मलेरिया रोग ठीक हो जाता है। पौधे को जड़ सहित उखाड़ कर रात्रि में किसी के घर की छत पर फेंकने मात्र से उस घर के सभी लोग गहन व अचेत निद्रा में सो जाते हैं और उस घर से आसानी से चोरी की जा सकती है।

43. मुगाड़ा/मुन्गा/सोजना (*मोरिन्गा आलिफेरा*) – मयूरभंज जिले में छाल के रस को छिड़कने से ही घर में घूसा हुआ साँप को आसानी से बाहर निकाला जाता है।

44. कदम (*नियोलैमार्किया कदम्बा*) – देवगढ़ जिले में पेडों को अधिक ऑक्सीजन छोड़ने के कारण इसे टी. बी से ग्रसित रोगी के घरों के पास लगाते हैं।

45. भल भदरिया/भादुड/शिवलिंगी (*ओलेक्स सकेन्डेस*) – बालंगीर जिले में तने का एक छोटा सा टुकड़ा को धागे से 7 बार लपेट कर ताबीज के अंदर रखकर पहनने से नजर व भूत–प्रेत नही लगता है।

46. दुपरिहा गाछ/बालेबाह (*पेन्टापेटस फोयनिका*) – मयूरभंज जिले में पत्तियों की माला बनाकर शनिवार –रविवार को गले में पहनने से ही मियादी बुखार ठीक हो जाता है। इसकी जड़ को औरत के गले/कलाई/कमर में बांधने मात्र से प्रसव शीघ्र व आसानी से होता है।

47. ओना /ओयेन्डा/भूमि आमला (*फायलेन्थस फ्रैटरनस*) – मयूरभंज जिले में जड़ को शनिवार को उखाड़ कर ताबीज में भरकर गले में बांधने मात्र से ही शनि ग्रह के बुरे असर का प्रभाव कम हो जाता है।

48. सर्प गंधा (*राउवोल्फिया सर्पेनटाइना*) – बालंगीर जिले में साँप के काटने पर रोगी को कड़वी जड़ को खिलाने से यदि स्वाद मीठा लगता है उससे पता चलता है कि काटने वाला साँप जहरीला था। इसे रोगी को हर 5 मिनट के अंतराल में तब तक दिया जाता है, जब तक उसे यह कड़वा ना लगे। इस पौधे को घर के पास लगाने से साँप उस परिसर में कभी नहीं आएगा।

49. पातालगरूड़ी (*राउवोल्फिया टेट्राफायला*) – मयूरभंज जिले में पौधों से एक विशेष प्रकार की गन्ध के कारण साँप भाग जाते हैं अतः इस पौधे को घर के आस पास उगाया जाता है।

50. भोलिया/सोसो भालिया/भेलुवा/ बन भालिया (*सेमिकार्पस एनाकार्डियम*) – बालंगीर जिले के आदिवासियों की मान्यता है कि फल के पाउडर को अंजान व्यक्ति द्वारा जानबूझ कर दूसरे के परिसर में किये मल पर डालने से उस संबंधित व्यक्ति को खुजली पैदा हो जाती है।

मयूरभंज जिले में फल के रस को रूई पर लगाकर नाक में सावधानी से डालने मात्र से किसी भी तरह का सिरदर्द ठीक हो जाता है। सूखे फल को गाय के टांग पर बांधने से उसका सूजन रोग 2–3 दिन में ही ठीक हो जाता है। इ

51. बन चकुंडा (*सेन्ना हिरसूटा*) – देवगढ़ जिले में पौधों को घर के पास लगाने से साँप, 30 फुट तक के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करता है ।

52. ब्रज मूली/छट कटकारी/ब्रीहाटी (*सीडा ओवाटा*)– मयूरभंज जिले में जड़ को ग्रहण के दिन उखाड़ कर कलाई में बांधने मात्र से भूख न लगने का रोग ठीक हो जाता है।

53. निपानिया /रंगानी (*सोलेनम सुरातन्से*) – मयूरभंज जिले में इसके सूखे फूल या फलों को तम्बाकू की तरह से हुक्का से धूम्रपान करने मात्र से ही दाँत के कीड़े मर जाते है।

54. डेंगा भेजी /भेजी बैगुन (*सोलेनम वियोलासियम*) – बालंगीर जिले में इसके सूखे बीजों को कागज में लपेट कर सिगरेट के रूप में धूम्रपान करने से दांत से हानिकारक कीड़े निकल जाते हैं। इसे गहराई से धूम्रपान करने से मस्तिष्क से भी हानिकारक कीड़े बाहर आ जाते हैं।

55. करियारथारनी/अपमार्गा/हाथ सुन्डी (*स्टेचिटारफेटा इंडीका*)– मयूरभंज जिले में आदिवासियों की मान्यता है कि इसके तीन पौधों को धान के खेत के तीन कोनों पर बांधने मात्र से ही हानिकारक कीट पतंगें या तो भाग जाते हैं या मर जाते है।

56. सहाड़ा/सहाड़ा सुन्दरी (*स्टरब्लस एस्पर*) – मयूरभंज जिले में आदिवासियों इसके पेड़ को भूत का निवास स्थल मानते हैं, आदिवासी लोग तीसरी शादी करने से पूर्व इस पेड़ के साथ फेरे लेते है अन्यथा नई विवाहिता को जान को खतरा रहता है।

57. बादी चांद/बादी चांग (*सिम्फोरिमा पॉलिएन्ड्रम*) – बालंगीर जिले में आदिवासियों की मान्यता है किइसके बीज को पत्थर पर घीस कर साँप के काटे व्यक्ति के नथुने में डालने से जहर बाहर उल्टी हो जाती है। बीज के पेस्ट को साँप के काटे भाग पर लगाने से यदि काला हो जाता है तो वह व्यक्ति नहीं बच पायेगा और यदि यह सफेद हो जाता है तो वह बच सकता है। इसके बीज को तुलसी की पत्तियों के साथ पीसकर दांई ओर काटने से बाईं ओर के नथुने में डालने से ठीक हो जाता हैं। इसके बीजों को जेब में रखने से उस व्यक्ति को साँप नहीं काटता है। इसीलिये सपेरा इनके बीजों को साथ में रखकर ही साँप से करतब दिखाता है ।

58. वन कुर्थो /गुरगुटी/सरपंखा (*टेर्फोसिया पुरपुरिया*)– मयूरभंज जिले में आदिवासियों द्वारा इसकी जड़ को धागे के साथ कान में बांधने मात्र से दाँत के कीड़े मर जाते हैं।

59. गुलान्चो/गुड़ची/तिहुड़ी/क्वेली सूता (*टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया*) – मयूरभंज जिले में इसकी सफेद जड़ को कमर या अंगुली में ढाई दिन तक बांधने मात्र से किसी प्रकार का बुखार ठीक हो जाता है।

60. मदांग/ मकरी/रसना (*वान्डा टेस्सिलाटा*) –देवगढ़ जिले में इसके पत्ते या फूल को ताबीज के अंदर रखकर पहनने से भय और भूत से बच जाते हैं।

61. बैगुनिया /सिन्दुरी/सिन्दुवार (*वाईटैक्स निगुन्डो*) – मयूरभंज जिले में सफेद फूलों का उपयोग इस क्षेत्र के ओझा या गुरु द्वारा नौ ग्रहों को शान्त करने में प्रयुक्त किया जाता है। इसकी जड़ को शुक्रवार/संक्रांति/पूर्णमासी को खोदकर, सूखा कर, पीसकर शहद मिलाकर एक मिट्टी के बर्तन में डालकर इसे धान के ढेर के अन्दर 31 दिन तक के लिए दबा देते है। तत्पश्चात इससे 5–10 ग्राम की गोलियाँ बनाकर 41 दिन तक रोज खिलाने से अनेक रोग जैसे हाथ पैर का दर्द, वात, गठिया, खाँसी, जुकाम, बुखार, धातु, प्रमेह, सिरदर्द, अपच, आँख व कान दर्द ठीक हो जाता है।

62. कानकुड़ी कांटा/कन्टेई कुड़ी (*जिजिपस ओइनोप्लीया*)– मयूरभंज जिले में इसके छोटे–छोटे कोमल पत्तों को पीसकर इसे जीभ से चटाने मात्र से परिवार में चल रहे लड़ाई झगड़े हमेशा के लिए शान्त हो जाते हैं।

63. कोंटई कोलि (*जिजिपस रूग्योसा*) – देवगढ़ जिले में जड़ के लेप को बच्चे के शरीर पर लेपने और उसके माथे पर टीका लगाने मात्र से निरंतर रोने वाला बच्चा भी शांत हो जाता है। इसके एक टहनी को हाथ में रख कर खेत के चारों ओर घूमने से अन्न के उत्पादन में वृद्धि होगी।

इन वनस्पतियों से संबंधित उपरोक्त लोक विश्वास प्रथम दृष्टया अविश्वसनीय, चमत्कारिक व हास्यास्पद लग सकते हैं किंतु हमें इन सदियों से प्रचलित लोक विश्वासों को संग्रहित कर उनके अंदर छुपे गूढ़ रहस्यों को वैज्ञानिक रूप से पुष्टी करने का प्रयास करना चाहिये। क्योंकि इन पेड़–पौधों के प्रयोग से लम्बे समय से वांछित लाभ प्राप्त हो रहे हैं। इन निश्चित पौधों को निश्चित कार्य में ही प्रयोग करने का अभिप्राय है कि उस पौधे का उस समस्या/ रोग के समाधान/उपचार से कोई ना कोई संबंध अवश्य होगा। जब हम किसी अमुक पौधे के किसी भाग को अपने शरीर के किसी अंग से बॉधते हैं या स्पृश करते हैं तो इन पौधों से किसी प्रकार की ऊर्जा, तेज, शक्ति या रसायन का रोगी के शरीर के साथ आदान–प्रदान या क्रिया–प्रतिक्रिया अवश्य प्रतीत होती हैं और उसी के परिणाम स्वरूप वह विशेष रोग या विकृति /समस्या ठीक हो जाती हैं। मेरे विचार के अनुसार आदिवासियों का इस प्रकार का उपचार भी स्पर्श उपचार (कान्टैक्ट थैरेपी) के सिद्धान्त की तरह ही कार्य करता है। जिस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में भी समाज का एक बड़ा तथाकथित शिक्षित, आधुनिक व धनी वर्ग खगोल शास्त्र, ज्योतिष विज्ञान, वास्तु–शास्त्र, 'रेक्की', अंक–ज्योतिष, तन्त्र–मंत्र, पूजा–पाठ, योग, आसन, स्पर्श–थिरेपी, 'एरोमा–थिरेपी', मड–थिरेपी, वाटर– थिरेपी', आयल– थिरेपी', 'फेथ–हिलिंग', आदि को कई रोगों एवं समस्याओं के निदान के लिए विश्वास के साथ अपना रहे हैं, उसी प्रकार से आदिवासी लोग भी अपने रोगों, व्याधियों व विकृतियों तथा घरेलू समस्याओं के उपचार व निवारण के लिए क्षेत्र में आसानी से उपलब्ध पेड़ पौधों के विभिन्न भागों को परम्परागत रूप से पूर्ण विश्वास के साथ सदियों से प्रयुक्त करते हैं।

आज के तथाकथित शिक्षित वर्ग के कुछ लोग जो पारम्परिक विषय की जानकारी नहीं रखते है तथा उनके गूढ रहस्यों/ कारणों को समझने में असक्षम होते है वह उन्हें 'अंधविश्वास' जैसा शब्द देकर उनका मजाक बनाते है जबकि इन साधारण व अंधविश्वास से प्रतीत होने वाले परम्परा, ज्ञान, धारणा, विधि व प्रयोग के पीछे कभी–कभी बहुत ही हितकारी उद्देश्य छिपे रहते हैं, जैसे किसी विशेष पेड़ या विशेष जंगल का पूजन व काटने पर निषेध के पीछे उनका संरक्षण करने का उद्देश्य रहा है, इसी कारण भारतवर्ष के अनेक आदिवासी क्षेत्रों में आज भी हजारों पावन वन संरक्षित हैं। जंगली उपयोगी पौधों के एकत्रीकरण के समय कुछ न कुछ हिस्से को वहीं पर छोड़ने की परम्परा के पीछे भी उनके जर्म प्लाज्म को समूचा नष्ट न कर उसे आगे के लिए संवर्धन की मंशा रही हैं। सप्ताह या मास में किसी विशेष तिथि व वार को ही जंगली उत्पाद के एकत्रीकरण के पीछे भी प्राकृतिक संसाधन के कम से कम दोहन की मंशा रही हैं। और उस पौधे में उपस्थित सक्रिय तत्व की अधिकता के कारण उस पौधे को उसी समय/ काल मे एकत्र करने की वैज्ञानिक पुष्टी भी हो चुकी है। अतः हमें इस प्रकार के पारम्परिक लोक विश्वासों एवं अमूल्य ज्ञान को अन्धविश्वास जैसे शब्द देकर उनका परिहास करने का प्रयास करने के बजाय इस तरह के पारम्परिक ज्ञान के पीछे छुपे गूढ़ तथ्यों / रहस्यों पर विवेकतापूर्ण विचार विमर्श व इनके संभावित वैज्ञानिक कारणों की पुष्टि करने का प्रयास करने के पश्चात इनका जनहित में प्रचार व प्रसार करने का प्रयास करना चाहिए।

पर्यावरण सुरक्षा का सपना,
यदि होगा मन में ।
मानव मस्तिष्क उन्नत होगा,
कोई रोग न होगा तन में ।।

सेमल पर नेजा – परंपरागत मान्यता द्वारा सरंक्षण की अनूठी प्रथा

वर्तिका जैन एवं एस. के. वर्मा*
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर
*पेसिफिक मेडिकल कॉलेज, उदयपुर, राजस्थान

सेमल *(बोम्बेक्स सीबा)* एक बहुपयोगी वृक्ष है और सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। सेमल के अतिरिक्त इसे शिमुल, शाल्मली, सिमल, हेमलो, सिम्बल इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा में इसे सिल्क कॉटन ट्री और इंडियन कपोक ट्री भी कहा जाता है। औषधीय रूप से इसका प्रत्येक भाग जड़, तना, पत्ती, गोंद, फल, फूल और छाल बहुत उपयोगी है। आर्थिक रूप से भी इसकी रेशमी रुई, लकड़ी और बीजों से निकलने वाला तेल महत्त्व रखता है। कीटरोधी रुई, गद्दे, तकिये, कुशन, रजाई, सोफे भरने के साथ ही सर्जिकल ड्रेसिंग के लिए भी प्रयोग में ली जाती है। इसकी लकड़ी हल्की होने के कारण माचिस उद्योग के अतिरिक्त नाव, ताबूत, वाद्य संयत्र इत्यादि बनाने में भी उपयोग में आती है ।

सेमल पर नेजा एक अनूठी प्रथा – सेमल वृक्ष कई आस्थाओं और मान्यताओं का प्रतीक है, इसमें से राजस्थान में इस वृक्ष पर नेजा बांधने की अनूठी प्रथा प्रचलित है। राजस्थान के उदयपुर शहर से लगभग 45 किलोमीटर दूर गिरवा तहसील में जावर गाँव हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इस गावं की जनसंख्या मात्र 3213 आंकी गई, इस गावं में जावर माता का प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर स्थित है। इस मंदिर के सामने सेमल का एक 55–60 फीट ऊँचा विशाल वृक्ष लगा हुआ है। ग्रामीणों का विश्वास है की, जावर माता की शक्ति इस सेमल के वृक्ष में निवास करती है, इसी कारण यह वृक्ष अत्यंत पूजनीय माना जाता है और कोई भी इस वृक्ष के किसी भी भाग को नुकसान नहीं पहुंचाता। इसके साथ ही यदि किसी भक्त की कोई मन्नत माता के मंदिर में पूरी हो जाती है तो इसी सेमल के वृक्ष पर वह नेजा बांधने का संकल्प लेता है। नेजा का तात्पर्य लाल कपड़े में नारियल, गुड, गेंहू या चावल और श्रद्धानुसार कुछ रुपये बंद कर सेमल के वृक्ष पर चढ़कर उसे बाँध देना है। यह कार्य प्रति वर्ष होली पर्व के बाद आने वाली चैत्र कृष्ण नवमी को किया जाता है, इसी दिन मंदिर क्षेत्र में ग्रामीणों का मेला भी लगता है, स्थानीय हस्तकला उत्पाद, मनोरंजन के लिए

1. प्रसिद्द जावर माता का मंदिर का हिस्सा 2. मंदिर के बाहर ढोल की ताल पर पारम्परिक गैर नृत्य करते पुरुष, 3. सेमल वृक्ष पर बंधे हुए नेजा
4. नेजा बंधन विजेता युवक सेमल वृक्ष को प्रणाम करते हुए, 5. नेजा को खोल कर सामग्री अलग करते हुए ग्रामीण,
6. नेजा उतारने के बाद मंदिर के बाहर खड़ा सेमल वृक्ष और मेले की रौनक

डोलर, चकरी इत्यादि सभी देखने को मिलता है। इसके साथ ही मेवाड़ का प्रसिद्ध लोक–नृत्य 'गैर' भी उत्साहपूर्वक खेला जाता है। नदी के किनारे और अरावली की पहाड़ियों से घिरे मंदिर क्षेत्र में लगे इस मेले की रौनक अभूतपूर्व होती है।

इस मेले का मुख्य आकर्षण सेमल वृक्ष पर बंधे नेजा को उतारने की प्रतियोगिता होती है। इस विषय पर स्थानीय लोग बताते हैं कि हालांकि इस क्षेत्र में भील, मीणा और गरासिया जनजातियों की अधिकता है, परन्तु इस प्रतियोगिता में समाज का हर वर्ग भाग लेता है। जावर गांव में छह फलां (समाज) हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं विरियां, डेरा, जावरमाला, वाड़ा, पाड़लिया और गढ़ इनमें से प्रत्येक वर्ष कोई तीन फलां के व्यक्ति नेजा बांधते हैं और दूसरे तीन फलां के व्यक्ति नेजा उतारते हैं और इसमें कोई दखल नहीं देता है। मंदिर के पुजारी बताते हैं कि दिन के चौघड़िया के अनुसार शुभ मुर्हत देख कर नेजा उतारने का समय तय किया जाता है।

इस रस्म के प्रारम्भ होने से पहले जंगल से 7 बांस तोड़कर लाये जाते हैं और मंदिर प्रांगण में एक साथ रख दिए जाते हैं, इसके पश्चात मंदिर में माता की आरती की जाती है। इस दौरान मंदिर के बाहर विभिन्न समुदायों के लोग ढोल की चाप पर पारम्परिक गैर नृत्य खेल रहे होते हैं।

आरती खत्म होते ही उन सात बांसों को गावं की सात महिलाएं अपने हाथ में ले लेती हैं और ढोल पर नृत्य करते हुए सेमल वृक्ष के निकट पहुँच जाती है। महिलाओं के बाहर आते ही बाहर चल रहा गैर नृत्य बंद कर दिया जाता है और अब ये सात महिलाएं ढोल की धुन पर इन बांस के साथ आपस में गैर खेलने लग जाती हैं। मेले की सारी भीड़ अब सेमल वृक्ष के चारों तरफ एकत्रित हो जाती हैं। इस दौरान जिन तीन फलां (समाज के चुने हुये व्यक्ति) को उस वर्ष नेजा उतारने का दायित्व मिला होता है, उनके पुरुष वर्ग इन गैर खेलती महिलाओं से बचते हुए सेमल वृक्ष तक पहुँचने का प्रयास करते है परन्तु बांस के सहारे गैर खेलती महिलाओं से बच नहीं पाते। ऐसा सात बार ढोल बजने तक किया जाता है और तब तक कोई पुरुष सेमल वृक्ष तक नहीं पहुँच पाता है। उसके बाद महिलाएं स्वयं रास्ता छोड़ देती हैं और फिर तीनों फलां के पुरुष सेमल वृक्ष पर चढ़ने के सफल–असफल प्रयास करते रहते हैं।

विशाल कंटीले सेमल वृक्ष पर चढ़ना काफी रोमांचक होने के साथ ही पूरी भीड़ के लिए बहुत मनोरंजक होता है। इस अनोखी प्रतियोगिता में काफी प्रयासों के बाद कोई एक ही सफल हो पाता है। वृक्ष पर चढ़ने के बाद विजेता पुरुष सबसे पहले वृक्ष को प्रणाम कर मुख्य मंदिर के द्वारा बांधे हुए नेजा को अपनी कमर में बाँध लेता है। इसके बाद वह एक–एक करके वृक्ष की विभिन्न शाखाओं पर बांधे गए नेजा को खोलता है और नीचे खड़े विभिन्न समुदायों के लोगों को देता जाता है। जब वह सारे नेजा को उतार लेता है तो पुनः वृक्ष को प्रणाम कर सावधानीपूर्वक वह वृक्ष से नीचे उतरता है और फिर विजेता को लोगो द्वारा कंधे पर बिठा कर उसे मंदिर तक लाया जाता है, जहाँ वह माता के दर्शन करता है। इसके पश्चात सारे नेजा को इकट्ठा कर मंदिर के पीछे बैठकर खोला जाता है और नारियल, गुड़,गेंहूँ, चावल और रुपयों को अलग अलग कर लिया जाता है। इस कार्य में सभी लोग सहयोग करते हैं और फिर यह सामग्री प्रसाद के तौर पर गाँव में सभी में वितरित कर दी जाती है। इसमें एकत्रित रुपयों को मंदिर के दान पात्र में डाल दिया जाता है। इस प्रकार उत्साह और उल्लास के साथ सोहार्दपूर्ण वातावरण में यह अनूठी परिपाटी पूर्ण की जाती है।

परम्पराओं से सरंक्षण – राजस्थान के अतिरिक्त सेमल वृक्ष भारत के कई अन्य राज्यों में फैली विभिन्न जन–जातियों की आस्थाओं और मान्यताओं का प्रतीक है। इसमें से कुछ इसे सौभाग्यशाली वृक्ष मान कर इसे पूजनीय मानते हैं वही कुछ इसमें आत्माओं और भूत–प्रेतों का निवास मानते है और इस से दूर रहते हैं। दोनों ही परिस्थितयों में ये प्रथाएं सेमल वृक्ष के सरंक्षण में सहयोग प्रदान करती है। परन्तु राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में सेमल वृक्ष को प्रह्लाद का प्रतीक मानते हुए प्रत्येक वर्ष होलिका–दहन में जलाने की प्रथा भी है, जिसके कारण इसकी संख्या में बहुत कमी आई है । जावर गावं में प्रचलित नेजा उतारने की इस प्रथा के अनुसार सेमल वृक्ष को पूजनीय माना जाता है और मंदिर के सामने स्थित वृक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाता है। इसके साथ ही वहाँ यह बात भी सामने आई की होलिका–दहन के लिए केवल सेमल वृक्ष की छोटी शाखाओं को प्रयोग में लिया जाता है और मूल वृक्ष को कोई नहीं काटता। इस तरह स्थानीय निवासी प्रथा के सरंक्षण के साथ ही सेमल वृक्ष के सरंक्षण में भी अपना सहयोग देते हैं. वहीं दूसरी ओर उदयपुर शहर में होलिका–दहन में जलाने की परंपरा के चलते सेमल वृक्ष हर वर्ष अपनी आहुति देता आया है। इस कारण जंगल में कम हुई इसकी संख्या का प्रभाव दूसरे वृक्षों की कटाई पर पड़ा है और अब होली पर्व पर सेमल के साथ ही गोन्दल, अरडू, हरसिंगार, जैसे वृक्ष भी बाजार में बिकते दिखाई पड़ते हैं।

औषधीय और आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण सेमल वृक्ष पारिस्थितिकी संतुलन में भी अपना विशेष स्थान रखता है. इसके रक्तवर्णी पुष्प कई पशु–पक्षियों का प्रिय आहार है और विशाल फैली हुई शाखायें कई पक्षियों का आश्रय स्थल भी है. सेमल वृक्ष की बहुपयोगिता को देखते हुए हमें इसके संरक्षण को प्रेरित करने वाली सभी मान्यताओं का पोषण करना चाहिए ताकि यह महत्त्वपूर्ण वृक्ष असमय ही काल–कवलित ना हो जाए और सभी इसके गुणों का लाभ ले सके ।

स्वच्छ हवा शुद्ध हो पानी,
स्वच्छ रहेगा हर कौई प्राणी ।।

पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम –उत्तराखण्ड राज्य की स्थानीय, संकटापन्न, औषधीय एवं बहुआयामी प्रजाति का सूक्ष्म प्रवर्धन विधि द्वारा संरक्षण

गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण देहरादून

वंश *पिट्टोस्पोरम* पिट्टोस्पोरेसी कुल का सदस्य है और विश्व में इसकी 300 जातियाँ पायी जाती हैं। भारत में पिट्टोस्पोरम की 11 जातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें *पिट्टोस्पोरम अन्नामलाऐन्स, पिट्टोस्पोरम सीलैनिकम, पिट्टोस्पोरम डेसीकौलन, पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम, पिट्टोस्पोरम फेरूजीनियम, पिट्टोस्पोरम हयूमाइल, पिट्टोस्पोरम नैपोलैनसिस* (या *पि. फ्लोरीबन्डम*), *पिट्टोस्पोरम नीलग्रैन्स, पिट्टोस्पोरम पोडोकारपम* (या *पि. ग्लैबरेटम*), *पिट्टोस्पोरम टेट्राकारपम* एवं *पिट्टोस्पोरम वाइरीडूलम* मुख्य हैं। *पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* (अग्नि) उत्तराखण्ड राज्य की एक स्थानीय, संकटापन्न, औषधीय प्रजाति है और उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल एवं कुमाँऊ क्षेत्र के हिमालयी भागों में पर्वतीय ढलानों पर विभिन्न स्थानों में पायी जाती है। उत्तराखण्ड राज्य में इसे अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे मैदा, तूमड़ी, गैड़, रडूथिया एवं अग्नि आदि। उत्तराखण्ड में यह जाति मुख्य रूप से पश्चिमी हिमालय के कम ऊँचाई वाले क्षेत्र मसूरी, नागणी–चम्बा एवं मध्य हिमालय (कुमाँऊ) की पहाड़ियों पर 2400 मीटर तक की ऊँचाई पर पायी जाती है। आर्थिक रूप से यह एक बहुआयामी जाति है और स्थानीय लोगों द्वारा इसे ईधन की लकड़ी एवं चारे हेतु प्रयोग में लाया जाता है। यह जाति मृदा संरक्षण के लिए अति महत्वपूर्ण है और बंजर भूमि को हरा भरा करने में उपयोगी साबित हुई है। इसकी छाल को स्थानीय लोगों द्वारा परंपरागत दवाइयों को बनाने में प्रयुक्त किया जाता है तथा मादक द्रव्य (नारकोटिक), कफ निस्तारक (एक्सपेक्टोरेन्ट) एवं फेफड़ों की सूजन (ब्रौंकाइटिस) आदि के उपचार हेतु प्रयोग किया जाता है। आज यह प्रजाति अपने प्रारूप स्थान (टाईप लोकेलिटी) क्षेत्र सहस्त्रधारा में कुछ पौधों तक ही सिमट कर रह गयी है एवं अन्य क्षेत्रों में भी इसकी संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गयी है।

वितरण – *पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* (अग्नि) उत्तराखण्ड में तीन जनपदों देहरादून, टिहरी एवं नैनीताल में पायी गयी हैं। देहरादून जनपद के मसूरी वन प्रभाग का सहस्त्रधारा क्षेत्र इस जाति का प्रारूप स्थान है, जहाँ से इस जाति को सर्वप्रथम खोजा गया था। इसकी सर्वाधिक संख्या (148 पौधे) देहरादून जनपद के मसूरी वन प्रभाग क्षेत्र में पायी गयी हैं जिनमें सहस्त्रधारा (25 पौधे), बार्लोगंज (25 पौधे) एवं कार्ट मैकिंगी रोड़ (24 पौधे) आदि सर्वाधिक संख्या वाले क्षेत्र है। इसके पश्चात् टिहरी जनपद के कैम्पटी फॉल (18), कान्डीखाल (26), नागणी (09), डोबरा (08) एवं धौलागिरी (02) से सर्वाधिक संख्या पायी गयी है।

***पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* पर संभावित खतरे** – आज यह जाति प्रकृति में कुछ ही स्थानों पर सिमट कर रह गयी है, जिसके मुख्य कारण बढ़ती जनसंख्या का दबाव, आवासीय विखण्डन, इसके प्राकृतिक वास क्षेत्रों में चूने की खदानों का विदोहन, जलवायु परिवर्तन, विदेशी हमलावर वानस्पतिक जातियों का दबाव एवं जाति के पथरीले प्राकृतिक वास के कारण बीजों के प्रचुर मात्रा में अंकुरित न हो पाना इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त इसके औषधीय गुण, स्थानीय लोगों द्वारा ईंधन एवं चारे हेतु में प्रयोग इत्यादि ने स्थिति को और भी भयावह बना दिया है। साहित्य एवं शोध पत्रों के अध्ययन से पता चला है कि उत्तराखण्ड में देहरादून जनपद के मसूरी वन प्रभाग क्षेत्र में इस जाति की सर्वाधिक संख्या पायी गयी हैं, किन्तु इस क्षेत्र के पर्यटक स्थल में विकसित होने एवं साल भर पर्यटकों की आवाजाही से इस जाति को भारी नुकसान हुआ है और अब इस क्षेत्र में इस जाति की संख्या में भारी गिरावट देखने को मिली है। पूर्व में प्रकाशित शोध पत्रों एवं वर्तमान में अध्ययन से यह पता चला है कि इस जाति की घटती हुयी संख्या का एक कारण जलवायु परिवर्तन एवं बढ़ता हुआ वैश्विक तापमान भी हो सकता है, जिसका प्रभाव इसकी विभिन्न ऋतु जैविक अवस्थाओं पर देखा गया है।

***पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* की विभिन्न ऋतुजैविक अवस्थायें** – सामान्यतः *पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम* में पुष्प एवं फलों की समयावधि अप्रैल से जुलाई माह तक रहती है (प्लेट क), कभी–कभी जून–जुलाई में तापमान कम होने पर यह अवधि अक्टूबर–नवम्बर तक भी पायी गयी हैं।

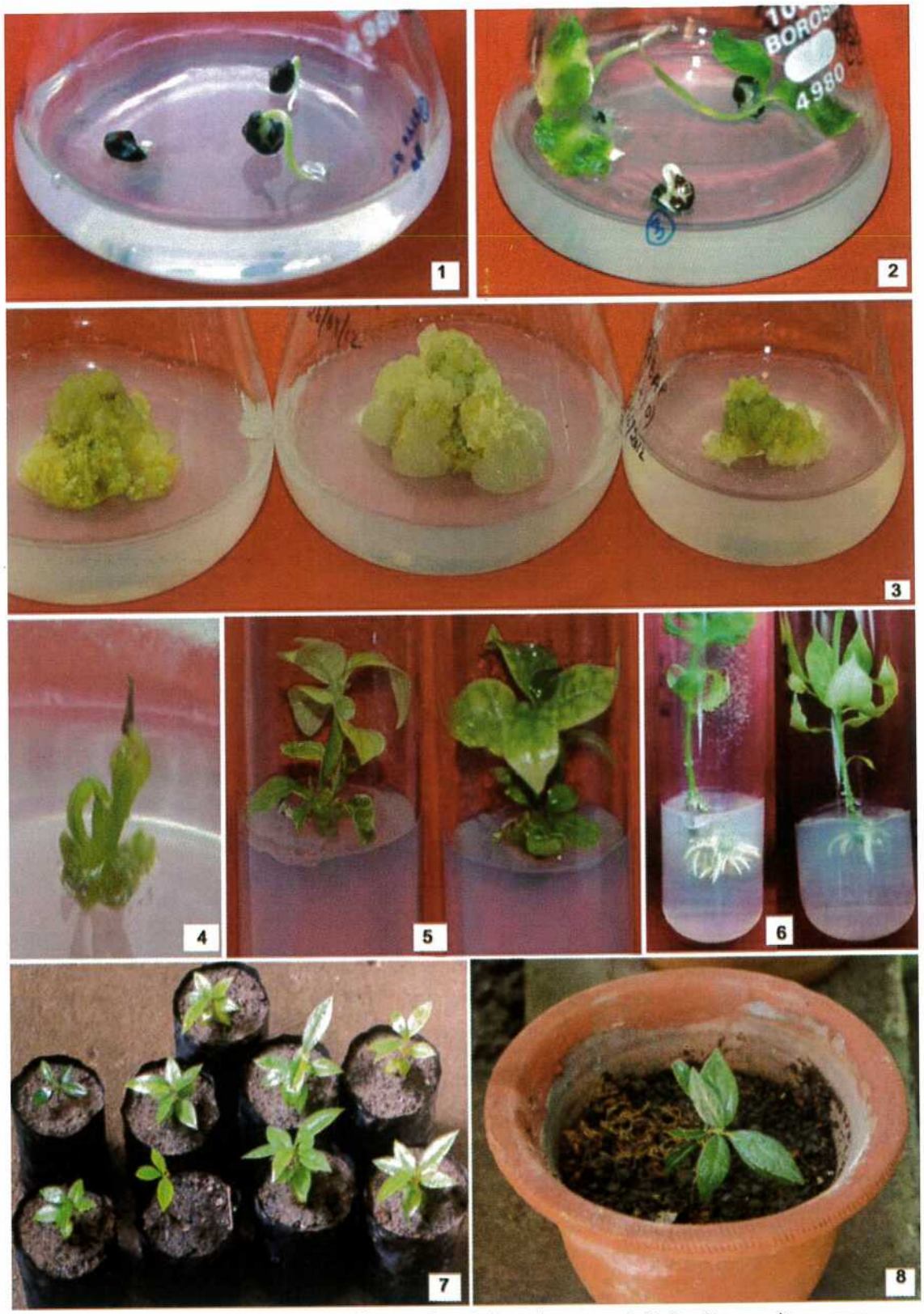

पिट्टोस्पोरम इरियोकारपम का पादप ऊतक संवर्धन – 1 और 2 बीजों का अंकुरण, 3. पूर्ण विकसित किण, 4. तनों का सूत्रपात 5. तनों का विकास, 6. जड़ों का विकास, 7 और 8. पौधों का खुले वातावरण में अनुकूलन।

मूल प्रेरण (रूट इंडक्शन) – ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित तनों को जड़ों के विकास हेतु मूल प्रेरण माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है। मूल प्रेरण माध्यम विभिन्न ऑक्जिन जैसे आइ. बी. ए., आइ. ए. ए. एवं एन. ए. ए. की विभिन्न सान्द्रताओं से संपूरित किये गये विभिन्न लवणों युक्त एम. एस. पोषक माध्यम (पूर्ण, अर्द्ध एवं चौथाई मात्रा) में विकसित तनों को प्रतिस्थापित किया जाता है। पूर्ण विकसित तनों को प्रतिस्थापित करने के 10–12 दिन पश्चात तने के निचले सिरे से जड़ें निकलनी प्रारम्भ हो जाती है और करीब एक माह में पूर्ण विकसित जड़ें प्राप्त हो जाती हैं।

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित पौधों का पारिस्थितिकी अनुकूलन – पूर्ण रुप से विकसित पौधों को संवर्धन नलिका से निकालकर पहले भली–भॉति धो लेते हैं और उसके उपरान्त उन्हें जीवाणु रहित वर्मीकुलाइट एवं मृदा से भरे गमलों में स्थानान्तरित किया जाता है। इन गमलों को प्रारंभ में आर्द्रता बनाये रखने के लिए एक सप्ताह तक प्लास्टिक की पॉलीथीन से ढक कर रखते हैं। एक माह पश्चात इन पौधों को मृदा से भरे गमलों में हरित गृह में स्थानान्तरित किया जाता है। हौगलैण्ड विलयन की 1:10 सान्द्रता के घोल वाला पानी पौधों को हर तीन दिन बाद दिया जाता है। धीरे–धीरे यह पौधे हरित गृह के वातावरण में अपने आप को ढाल लेते हैं और अन्ततः इन पौधों को नर्सरी या वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। एक बार खुले वातावरण में अनुकूलित हो जाने के पश्चात इन पौधों को प्रकृति में इनके प्राकृतिक आवास में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं भावी संभावनायें – इस पादप प्रजाति के संरक्षण के लिए ऊतक संवर्धन के साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके प्राकृतिक वास को खनन एवं मानव गतिविधियों से संरक्षित किया जाये और राज्य वन विभाग इसके बीजों से पौध तैयार करके यथावत क्षेत्रों में पौधरोपण करके इस जाति के संरक्षण को सुनिश्चित करने का प्रयास करे, और अन्त में इसके संरक्षण के साथ–साथ इसके अछेदित (अनटैप्ड) जैव रसायनिक गुण को भी वैज्ञानिक तरीके से खोजने की जरूरत है।

पशु–पक्षी तथा इंसान,
हरियाली ही जीवन दान।
पेड़ ही तो जीवन है,
पेड़ है धरती की शान।।

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान की झीलों पर प्रदूषण का प्रभाव एवं उसका उपचार

बसंत कुमार सिंह एवं हिमांशु शेखर महापात्र
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान दक्षिण पूर्व एशिया का वृहद् एवं प्राचीनतम वनस्पति उद्यान है, जो अपने पादप संपदा और शोध के मौलिक तत्वों की संपन्नता के लिए विश्व प्रसिद्ध है । इस उद्यान की स्थापना 1787 में कर्नल रॉबर्ट किड द्वारा रॉयल बॉटनिक गार्डेन या कंपनी बागान के रुप में की गई थी । ईष्ट इंडिया कंपनी के अधीन इस उद्यान का विकास आर्थिक पौधों को भारतीय जलवायु में परखने के लिए किया गया और इस तरह इस उद्यान में सर्वप्रथम रबड़, महोगिनी, कॉफी और चाय की खेती की गई जिसे बाद में व्यापक तौर पर भारत के विभिन्न प्रान्तों में लगाया गया और वर्तमान समय में भारत की आर्थिक संपन्नता का आधार बना । स्वतन्त्रता के बाद इस उद्यान के उद्देश्यों में परिवर्तन आया और यह मुख्य तौर पर परा– स्थानीय (एक्स सीटू) संरक्षण का केन्द्र बना गया। आज यहाँ केवल इस देश के ही नहीं बल्कि विदेशों के विरल एवं अवलुप्त प्राय पौधों को संरक्षित किया जाता है। आज इस उद्यान में 1400 से भी अधिक प्रजातियों के पौधे संरक्षित है, जो पादप वर्ग पर शोध करने वालों के लिए किसी स्वर्ण संपदा से कम नहीं है। पादप संपदा के साथ साथ यह उद्यान अपनी भौगालिक बनावट के लिए भी दर्शकों का ध्यान आकर्षित करता है। 19वीं शताब्दी में जॉर्ज किंग के निरीक्षण में इस उद्यान के भूदृश्य निर्माण के दौरान सभी खंडो में सिंचाई की व्यवस्था के लिए 24 झीलों निर्माण कराया गया था, जो आपस में जुड़ी हुई हैं और जिनका प्रांतिक लगाव हुगली नदी के साथ है। दरअसल पूरी प्रणाली को इस तरह से नियंत्रित किया गया था कि ज्वार के समय नदी का साफ पानी झीलों में भर जाए और भाटा के साथ झीलों में पानी का स्तर प्रारम्भिक स्थिति में लौट जाए। उद्यान की इन झीलों में भी विभिन्न प्रकार के जलीय जीव एवं पौधे भी संरक्षित है। पादपों में *विक्टोरिया अमाजोनिका, विक्टोरिया क्रुजियाना, युराइल फेरोक्स* इत्यादि प्रमुख है।

समय के साथ हुगली नदी का तल उथला होता गया तथा ज्वार के समय पानी के साथ रेत भी उद्यान में प्रवेश करता रहा और धीरे–धीरे उद्यान की झीलों का आपसी संपर्क खत्म हो गया। दूसरी तरफ जनसंख्या में वृद्धि के कारण उद्यान के अहाते में मानव आवास में वृद्धि हुई जिसका असर उद्यान पर परिलक्षित होने लगा है। आज उद्यान के आसपास विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधों की स्थापना हो गई है, जिसमें डाई कारखाना से लेकर पॉलियेस्टर के धागे बनाने तक का कारखाना है। नतीजा यह हुआ कि उद्यान परिसर के निकट से बह रहे नगर निगम के नाले में भी रासायनिक पदार्थो की बडी मात्रा बढ़ती चली जा रही है और यह विभिन्न तरीके से उद्यान में प्रवेश भी कर रहा है । फलस्वरुप यहाँ के जलाशयों

में इन रासायनिक तत्वों का अंश मिलने लगा है। इसके साथ ही नगर निगम प्रदूषित जल के निकास की व्यवस्था न किए जाने के चलते उसे उद्यान परिसर में ही उडेल देते हैं ।

1–4. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान की झीलों एवं कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों से प्रदूषण का दृश्य

प्रदूषण के विभिन्न श्रोतों तथा प्रकारों ने इन जलाशयों में पाये जाने वाले पादपों को भी प्रभावित किया। इन्हीं प्रभावों को 2010 से 2013 के बीच उद्यान में अध्ययन के माध्यम से समझने का प्रयोग किया गया। 2011 में राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के द्वारा कराये गये पानी की नमूनों की जांच में चौंकाने वाले तथ्य सामने आये प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने उद्यान की 24 झीलों में से 3 झीलों के पानी के नमूनों की जांच की गई। ये तीन झील थी – लेराम झील, प्रेन झील एवं कुन्सटलर झील । इन तीन झीलों का चुनाव उद्यान में उनके अवस्थान एवं प्रदूषण श्रोतों के प्रकार पर आधारित था। लेराम झील उद्यान के पश्चिम प्रान्त में अवस्थित है और उद्यान परिसर के अंतर्गत प्रवाहित कैनाल से पूरी तरह जुडी है और इस छोर पर कैनाल एक स्लूइस फाटक के माध्यम से हुगली नदी से जोडा गया था । योजना के अनुसार इस रास्ते के माध्यम से कैनाल का पानी बाहर निकालना था, मगर समय के अंतराल में तथा मानव आवास की वृद्धि ने नदी और फाटक के इस संयोजक को इतना प्रभावित किया कि वर्तमान में यह थर्माकोल, प्लास्टिक बोतलों एवं अन्य व्यर्थ पदार्थो से इस कदर पट चुका है कि रिवर्स फ्लो के सिद्धान्त पर केवल घरेलू कचरा एवं गंदा पानी ही उद्यान में पहुंचता है और सीधी तौर पर लेराम झील को प्रदूषित करता है। इस झील में सी.ओ.डी. और बी.ओ. डी. की मात्रा क्रमशः 28.91 और 7.93 पाई गई है, जो सामान्य से काफी अधिक है। घरेलू कचरे की बहुलता होने के चलते कुल कॉलिफॉर्म जीवाणु की मात्रा बढ़ गई है, जिसने यूट्रोफिकेशन को बढा दिया है और जिसके फलस्वरुप विभिन्न प्रकार के जलीय पादप जैसे *सालविनिया, एजोला, आइकोर्निया* इत्यादि ने झील के पानी को पूरी तरह से ढक लिया। इन जलीय पादपों ने आक्सीजन के प्रवाह को भी रोक दिया, नतीजा यह हुआ है कि लेराम झील में आक्सीजन की कमी के कारण जलीय जंतुओं की संख्या काफी कम हो गई। 2010 में इसी झील में मछलियों के मरने की घटना इसी बात को प्रमाणित करती है।

वहीं दूसरी तरफ प्रेन झील उद्यान परिसर में उत्तरी प्रान्त से सटा हुआ है, जहाँ उद्यान के बाहर कारखानों की बहुलता है और इसका गंदा पानी सीधे झील तक पहुँचता है और इसे दूषित करता है। इस झील के नमूनों के रासायनिक विश्लेषण से यह तथ्य सामने आया है कि इस झील में अजैव रासायनिक तत्वों की बहुलता है, जिसने सी.ओ.डी. स्तर को 502.5 एवं बी.ओ.डी. स्तर को 287 एम.जी./ली. की मात्रा तक पहुँचा दिया है । इसके अलावा इसमें तांबा , पारा एवं जिंक की भी अल्प मात्रा पाई गई है, जो औद्योगिक प्रदूषण का संकेत है । प्रदूषण के इस स्तर ने यहाँ उच्च वर्ग के पौधों को पनपने का मौका ही नहीं दिया है। अजैव तत्वों की बहुलता होने के चलते यहाँ केवल कुछ शैवालों जैसे *स्पाईरोगाइरा,* ब्लू ग्रीन–शैवाल का ही विकास हो पाया है ।

कुन्स्टलर झील उद्यान के लगभग बीच में स्थित है और प्रदूषण श्रोतों से काफी दूर है तथा चारों तरफ से अन्य झीलों से घिरी है। नतीजन इस झील का पानी तुलनात्मक रुप से साफ है और पानी में निरन्तर ऑक्सीजन का प्रवाह होता रहता है और जलीय पौधों को प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करने में सहायता मिलती है। इस झील में जलीय पादप जैसे *सेराटोफाइलम, लेम्ना, सेजिटेरिया, पोटामोजीटोन* इत्यादि और जलीय एवं उभयचर जंतु जैसे मछली, कछुआ, इत्यादि की भरमार है ।

इन्ही मैक्रोफाइट्स के प्रचुर विकास और मछली मरने की घटना ने उद्यान अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया और तुरन्त उचित कार्रवाई की गई। केन्द्रीय लोक निमार्ण विभाग की सहायता से 2013 में विगादन (डीसिल्टेशन) का काम शुरु किया गया । अंतः–संयोजन को पुनस्थापित कर हुगली नदी के पानी के प्रवाह को सुनिश्चित किया गया । साथ ही बाहर से आने वाले प्रदूषण के सभी श्रोतों को बंद कर दिया गया है। वर्तमान समय में उद्यान की सभी झीलें हर प्रकार के प्रदूषणों से मुक्त है । भविष्य में इसे और सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए अलग अलग प्रकार के विकासात्मक कार्य प्रगति पर हैं ।

जैव प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण प्रबंधन

नितिषा श्रीवास्तव एवं सुबीर सेन*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

बढ़ती जनसंख्या शहरीकरण, औद्योगिकीकरण एवं अन्य मानव जनित विकासात्मक गतिविधियों के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। हमें विकास की अंधाधुंध दौड़ में प्रकृति की अनदेखी नहीं करनी चाहिए, अपितु सतत विकास का मार्ग अपनाना चाहिए। सतत विकास का अभिप्राय ऐसे विकास से है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग हुआ हो, अर्थात हम आज की पढ़ी के विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उतनी ही मात्र में करें जिससे की हमारी आज की आवश्यकता पूरी हो जाए और हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी वह महत्वपूर्ण संसाधन उपलब्ध हो सके।

विकास की चाह में हम पर्यावरण सुरक्षा को दरकिनार नहीं कर सकते। हमें हमारे विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के मध्य संतुलन बना कर चलना होगा। मानव को ईश्वर ने यह अधिकार कभी नहीं दिया की वह केवल अपने ऐश्वर्य एवं आराम के लिए प्रकृति में पनप रहे अन्य जीव–जंतुओं का इच्छानुसार दोहन करे, यद्यपि मानव इसे ही अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता रहा है, तभी तो वह समस्त जीव जंतुओ में खुद को श्रेष्ठ मानते हुए प्रकृति तथा इसके अवयवों को अपने अनुसार सुनियोजित करने में लगा है। इसी प्रवृत्ति के कारण ही हमें आए दिन प्रकृति के कोप का भाजन बनना पड़ता है। इतिहास साक्षी रहा है कि मानव ने जब–जब प्रकृति की अनदेखी की है तब–तब उसे इसके अत्यंत दुष्कर परिणाम देखने को मिले है।

हमारे देश में वायु प्रदूषण एक मुख्य समस्या है। हमारे देश के कई स्थान विश्व के अत्यंत प्रदूषित शहरों की सूची में सूचीबद्ध हैं। वायु प्रदूषण के साथ ही साथ जल प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण का स्वरूप भी विकराल होता जा रहा है तथा इनके कारण जनित बीमारियों ने तो मानव स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाला है। आज के इस वैज्ञानिक युग में जैव–प्रौद्योगिकी का महत्व बढ़ता चला जा रहा है। जैव–प्रौद्योगिकी अपशिष्ट पदार्थों के उपचार हेतु एक अद्वितीय, सक्षम एवं परिस्थितिकी अनुकूल एवं व्यवहार्य विकल्प प्रस्तुत करती है तथा इसकी सहायता से विषाक्त अपशिष्ट पदार्थों को पूर्ण रूप से विघटित करके उन्हे हानिकारक सह–उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है। यद्यपि यह क्षेत्र अभी एकदम नया है, परंतु इसमें अपार संभावनायें व्याप्त है। यह परंपरागत उपायों की अपेक्षा अधिक प्रभावी, सुरक्षित एवं सस्ता है।

वर्तमान में शोधशालाएँ सीमेंट लाइन वाले गड्ढों में कीच को डाल देती है और उसका शोधन नहीं करती है। जैव–प्रौद्योगिकी के माध्यम से सूक्ष्म–जीवों का उपयोग करके पेट्रोलियम कीच एवं कच्चे तेल के फैलाव के शोधन हेतु एक प्रोद्यौगिकी विकसित की गयी है, जिसके माध्यम से विषाक्त हाइड्रोकार्बनों को चार माह की अवधि में कार्बन डाई आक्साइड एवं जल में परिवर्तित किया जा सकता है। पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में जैव–प्रौद्योगिकी के अनेक योगदान है, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण का वर्णन निम्नलिखित है।

1. सूक्ष्म–जीवों से सफाई – जीवों के माध्यम से पर्यावरण की सफाई एक अत्यंत उपयोगी विषय है। कई दशकों से मिलों एवं कारखानों से निकले रसायनों को जैविक ताल में परिष्कृत किया जाता रहा है। ऐसे रसायनों का शोधन कर इन्हे सरल पदार्थों में परिवर्तित करने वाले जीनों को विभिन्न जीवों से निकालकर जैव–प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी सूक्ष्म–जीव में डाला जाता है, जिससे की ये प्रदूषक रसायनों को क्रमबद्ध तरीके से हानि रहित रसायनों में परिवर्तित कर सकें। आज के समय में वैज्ञानिकों ने कई विलक्षण गुणों वाले सूक्ष्म–जीवो को खोज निकाला है, जिसमें इस तरह की अपार संभावनाएँ निहित हैं। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने आल्टरमोनास नामक ऐसे बैक्टीरिया की खोज की है जो सभी प्रकार के जैविक युद्ध कारकों, सेरिन जैसी उत्तेजक गैस को भी निष्क्रिय कर सकती है।

पॉली–क्लोरो बाइफिनाइल (पी०सी०बी०) संश्लेषित, अजैव अपक्षीणक रसायनों का एक वर्ग है। इसका उपयोग विश्व भर में तब से हो रहा है, जब लोग इनके हानिकारक प्रभाव से परिचित नहीं थे। ये अग्निरोधी और ऊष्मा–स्थायी रसायन लोकप्रिय हाइड्रोक्लोरिक तरल है, जिनका उपयोग जलसह्य यौगिक, कार्बन रहित पेपर और प्रिंटिंग इंक बनाने में किया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व पी० सी० बी० को भरी धातुओं और डाईआक्सीनों की तरह अत्यंत विषैला प्रदूषक समझा जाता था तथा इसका उत्पादन भी बंद कर दिया गया था किन्तु अब जैव–प्रोद्यौगिकी के माध्यम से पी०सी०बी० को पुनः संयोजित बैक्टीरिया से अपिक्षीणित किया जा सकता है।

2. पेट्रोलियम कीच को कम करना– नदियों, समुद्र, तालाब, पोखरों आदि की सतहों पर तेल का फैलाव पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र के लिए महत्वपूर्ण संकट के रूप में उभर चुका है। यह ऐसे पारितंत्र में पनपने वाली वनस्पतियों एवं जीव–जंतुओं के अस्तित्व के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है। तेल अधिप्लाव जमीन पर कई तरह के खतरे उत्पन्न कर सकता है, जैसे अग्नि विभीषिका, रिसाव के कारण भू–जल प्रदूषण, वाष्पीकरण के कारण वायु प्रदूषण, आदि। अतः तैलीय कीच के प्रबंधन के लिए रिफाइनीरियों को एक सुनियोजित प्रबंधन तकनीक की आवश्यकता है। आज के इस वैज्ञानिक युग में जैव–प्रौद्योगिकी के माध्यम से इसका भी उपचार संभव है। टाटा ऊर्जा अनुसंधान के वैज्ञानिकों ने एक प्रभावी बैक्टीरियाई संकाय विकसित किया है जो कच्चे तेल एवं तैलीय कीच को बहुत तेजी से निम्नीकृत करता है। पाँच बैक्टीरियाई प्रभेदों का मिश्रण करके एक ऐसे संकाय को विकसित किया गया है, जो कच्चे तेल एवं तैलीय कीच को कम कर सकता है।

3. खनन क्षेत्र पारिस्थितिकी पुनः सुधार हेतु जैव–प्रौद्योगिकी – खनन कार्य खनन क्षेत्र की पारिस्थितिकी को बहुत नुकसान पहुचाता है। खनन क्षेत्र में अपशिष्ट पदार्थो के जमा हो जाने के कारण भूमि का उपजाऊपन घट जाता है जिसके कारण वह भूमि बंजर हो सकती है। राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी), नागपुर तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने खानों से निकले अपशिष्ट और अवक्रमिक पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक उपचार हेतु एक समेकित जैव–प्रौद्योगिकी प्रणाली का विकास किया है जिसके माध्यम से खानों से निकले अपशिष्ट में अवलंबी एवं पोषक राइजोस्फियर का विकास होता है तथा यह प्रक्रिया लगभग 18 माह में पूरी हो जाती है।

4. प्रदूषण नियंत्रक पौधे – जीवधारियों जैसे– बैक्टीरिया, कवक एवं पेड़–पौधों के माध्यम से प्रदूषकों को निम्नीकरण, स्वांगीकरण एवं वाष्पीकरण द्वारा प्रदूषित क्षेत्रों से हटाया या घटाया जा सकता है तथा यह प्रक्रिया बायोरिमिडिएशन कहलाती है।

सूक्ष्म जैविक बायोरिमिडिएशन– सूक्ष्म जैविकों के माध्यम से प्रदूषकों को दो तरीकों से खत्म या निम्नीकृत किया जा सकता है, पहला सूक्ष्म–जैविक संकाय को प्रयोगशाला में विकसित करके प्रदूषित क्षेत्र में ले जाया जाता है तथा दूसरा प्रदूषित क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से उपस्थित सूक्ष्म जीवकों द्वारा। सूक्ष्म जैविक बायोरिमिडिएशन में ऐसे बैक्टीरिया या कवक प्रजातियों का उपयोग किया जाता है, जो जहरीले रसायनों एवं प्रदूषकों को स्वांगीकृत करने में सक्षम हो।

फाइटोरिमीडीएशन– इस तकनीक में प्रदूषित क्षेत्रों मे से प्रदूषकों को हटाने या कम करने के लिए हरे पेड़–पौधों एवं उन पर आश्रित सूक्ष्म–जीवकों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर जैसे गाजर का उपयोग डी०डी०टी० (डाइक्लोरो–डाइफेनिल–ट्राईक्लोरोएथेलिन) को कम करने के लिए किया जाता है।

जलीय पौधों द्वारा पानी की सफाई करने का इतिहास बहुत पुराना है, यह प्रक्रिया बहुत सस्ती और प्रभावशाली है। जब इन संवहनी पौधों को जल में उगाया जाता है तो ये जल में उपस्थित प्रदूषण का स्वांगीकरण कर इनका भंडारण करते है।

5. धातुभक्षी पौधे – हमारे देश की कुल भूमि का एक बड़ा हिस्सा मिट्टी में विषैले धातुओं की उपस्थिति के कारण बंजर हो गया है। इन्ही क्षेत्रों में कभी रासायनिक इकाइयाँ रही होंगी। वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे पादप जातियों का पता लगाया है जो ऐसी भूमि में उगकर इनकी विषैली धातुओं का स्वांगीकरण करके भूमि को पुनः उपजाऊ बनाने में सहायता करते है, बंदगोभी, फूल गोभी, आदि ऐसे ही पौधों के उदाहरण है। ये पौधे भूमि उत्थान के लिए वरदान सिद्ध हुए है।

6. परखनली वन– हमारे देश की अर्थव्यवस्था में वृक्षों एवं वृक्ष–उत्पादों का बहुत बड़ा योगदान है, तथा जनजातियों तथा वनवासियों का एक बहुत बड़ा समूह अपनी रोजी–रोटी के लिए इन पर निर्भर है। वनो की अंधाधुंध कटाई ने इनके अस्तित्व को संकट मे डाल दिया है। जितने वृक्ष लगाए नहीं जाते उसके चार गुना काट दिये जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अनेक वृक्ष प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर है। जैव–प्रौद्योगिकी ने अब इसका भी हल ढूंढ निकाला है। ऊतक संवर्धन एवं माइक्रो–प्रवर्धन के द्वारा ऐसी विलुप्ति के कगार वाले वृक्षों की लाखों की संख्या में पौध उपलब्ध कराई गयी है।

ऊतक संवर्धन के माध्यम से किसी रोगमुक्त वृक्ष के किसी भी भाग से उस पौधें की लाखों की संख्या में नयी पौध तैयार की जा सकती है। यह विधि बहुपयोगी एवं आसान होने के साथ ही साथ सस्ती भी है। इस तकनीक का प्रयोग वानिकी, कृषि, पुष्पोत्पादन तथा फलोत्पादन में भी किया जा सकता है। साथ ही साथ इस विधि द्वारा कुछ विशिष्ट गुण–धर्म वाले पौधों को मात्रा को भी गुणित किया जा सकता है। इस विधि द्वारा उत्पन्न किए गए सभी पौधों की आनुवांशिक रचना समान होती है और ये जनक पौधें के समान होते हैं। इस विधि का उपयोग करके कुछ महत्वपूर्ण बहुपयोगी वृक्षों जैसे बांस, चन्दन, पापुलर, आदि का गुणन किया गया है।

7. चर्म उद्योग में जैव-प्रौद्योगिकी– खुरदुरे चमड़े को चिकना एवं सुंदर बनाने के लिए खोजी गयी अनेक नवीन रासायनिक विधियों के कारण चमडे उद्योग के कारण ही चमड़ा उद्योग सर्वाधिक प्रदूषण फैलाने वाला उद्योग है। इस उद्योग के अपशिष्ट पदार्थों में सड़ा हुआ मांस, रक्त तथा विषैले रसायन सम्मिलित हैं। खुरदुरे खल को चिकने चमड़े के रूप में आने तक अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है तथा इनमें अनेक प्रकार के विषैले रसायनों का प्रयोग किया जाता है। चर्मशोधन की इन्ही प्रक्रियाओं के कारण ही चर्म उद्योग प्रदूषण का इतना बड़ा श्रोत है।

वैज्ञानिकों ने इन प्रक्रियाओं में भी जैव–प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके रासायनिक प्रदूषण की मात्रा को कम करने का प्रयास किया है। इन विधियों में खाल को चिकना एवं रोगमुक्त बनाने के लिए कुछ एंजाइमों का प्रयोग किया जाता है। खाल की चिकनाई हटाने के लिए वसा को पचाने वाले एंजाइमों का प्रयोग किया जाता है। चमड़ा उद्योग से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थों के उपचार के लिए भी जैव–प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

8. कागज उद्योग में जैव- प्रौद्योगिकी – कागज की बढ़ती हुई मांग ने वनों पर अतिरिक्त दबाव डाला है। कागज बनाने की प्रक्रिया में उपयोग होने वाले रासायनों से पर्यावरण प्रदूषण का संकट और अधिक गहरा गया है। इस प्रक्रिया में बनने वाले अपशिष्ट पदार्थों को नदियों तथा नालों में बहा दिया जाता जाता है, जो पेयजल एवं जल–पारितंत्र को प्रदूषित करते है। अतः यह कहना अधिक उचित होगा की हमें कागज बनने की प्रदूषण रहित विधियों का विकास करना होगा।

काष्ठ या लकड़ी, जिसका प्रयोग कागज बनाने में किया जाता है, वह मृत कोशिकाओं का समूह मात्र है। कागज बनाने के लिए काष्ठ के सेलुलोस रेशों को अलग करके शीट बनाई जाती है, जिसे पल्पिंग कहते है । जैव–प्रौद्योगिकी की सहायता से जैविक–पल्पिंग का प्रयोग लिग्निन तथा अन्य सेलुलोसी पदार्थों को हटाने में किया जा सकता है।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए जाइलानेस नामक एंजाइम की खोज की है, जो जाइलान नामक हेमीसेलूलोस को निम्नीकृत करता है। जैव–प्रौद्योगिकी के माध्यम से कागज उद्योग को भी प्रदूषण रहित बनाया जा सकता है। सेलुलोस मुक्त जाइलानेस से उपचरित लुगदी से उत्तम गुणों वाला कागज तैयार किया जा सकता है।

9. धातु संक्षारण नियंत्रण में जैव-प्रौद्योगिकी– धातुओं या मिश्रित धातुओं का वातावरण से परस्पर अभिक्रिया द्वारा धात्विक प्रावस्था से संयुक्त प्रावस्था में परिवर्तित होना धातुओं का संक्षारण कहलाता है, यह एक विद्युत रासायनिक क्रिया है। जब संक्षारण जीवाणुओं की परोक्ष या प्रत्यक्ष क्रियाओं द्वारा प्रभावित होती है तो ऐसे संक्षारण को जैव–संक्षारण कहते है।

जैव–संक्षारण को रोकने के लिए हमारे देश में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें से निरोधक प्रमुख है। इनकी अल्प मात्रा ही संक्षारण को रोकने मे सक्षम होती है। जैव–संक्षारण में जीवनाशी का उपयोग मुख्य भूमिका निभाता है। जैव–संक्षारण में जीवनाशी का चुनाव जीवाणुओं की जातियों के अनुसार किया जाता है। ये यौगिक धातु की सतह पर अधिशोषित होकर संक्षारण रोकने हेतु अवरोधक का काम करते है।

ये हैं जंगल के उपकार, मिट्टी पानी और बयार ।
मिट्टी पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार।।

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण : पर्यावरण संरक्षण के लिए एक विशेष कोर्ट

भरत गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता के संवर्धन एवं पर्यावरणीय मुद्दों पर न्याय प्रदान करने वाला एक न्यायालय है। अन्य न्यायालयों से भिन्न यह एक विशेष कोर्ट है जिसमें पर्यावरण रक्षा, वनों के संरक्षण, इससे जुड़ी क्षति पूर्ति या लोगों को हुए नुकसान आदि के बारे में निर्णय लिये जाते हैं।

18 अक्टूबर 2010 को एक अधिनियम के द्वारा पर्यावरण से संबधित कानूनी अधिकारों को लागू करने एवं व्यक्तियों और संपत्तियों के नुकसान के लिए सहायता और क्षति पूर्ति देने के लिए इस न्यायाधिकरण को बनाया गया। इसमें पर्यावरण संरक्षण, वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों से संबधित मामलों के प्रभावी एवं त्वरित निपटारे भी किये जाते हैं। यह न्यायाधिकरण सिविल प्रोसीजर कोड 1908 के अन्तर्गत तथा प्रक्रिया द्वारा बाधित नहीं है, बल्कि यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित है। एनजीटी के चैयरमैन सुप्रीमकोर्ट के सेवानिवृत जज होते हैं, एवं अन्य सदस्यों के रूप में हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं। इसका मुख्य केन्द्र दिल्ली जबकि चार क्षेत्रीय शाखाए पूणे, भोपाल, चेन्नई और कोलकाता में स्थापित की गई हैं। इसके अलावा जरूरत के हिसाब से इसकी शाखाएं बनाई जा सकती हैं।

एनजीटी में सिर्फ इन कानूनों से जुड़ी बातों को चुनौती दी जा सकती है।

1. जल (रोकथाम और प्रदूषण नियत्रंण) अधिनियम 1974
2. वन संरक्षण कानून 1980
3. जल (रोकथाम और प्रदूषण नियंत्रण) उपकर कानून, 1977
4. वायु (रोकथाम और प्रदूषण नियत्रंण) अधिनियम, 1981
5. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986
6. पब्लिक लायबिलिटी इंश्योरेंस कानून, 1991
7. जैव विविधता कानून, 2002

हालांकि वन्य जीव संरक्षण कानून 1972, भारतीय वन कानून 1927 और राज्य द्वारा जंगल और पेड़ की रक्षा के कानून एनजीटी के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैंकिन्तु उच्चतम न्यायालय में या उच्च न्यायालय में जनहित याचिका या सिविल सूट लाए जा सकते हैं। एनजीटी में आवेदन डालने का तरीका बहुत ही सरल है। क्षतिपूर्ति के मामलों में दावे की रकम की एक फीसदी राशि अदालत में जमा करनी होती है। पर जिन मामलों में क्षतिपूर्ति की बात नहीं होती, उसमें मात्र एक हजार रू. की फीस ली जाती है। आदेश और निर्णय देते समय एनजीटी स्थाई विकास की ओर ध्यान देता है तथा पर्यावरण से जुड़ी सावधानियॉ बरतने की कोशिश करता है। यह संस्था मानती है कि पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले इसकी भरपाई भी करें।

जनवरी 2015 तक एनजीटी के पास कुल 7768 मामले आये हैं। इनमें से 5167 मामलों में फैसले दिये गये हैं। संविधान में 1976 के संशोधनों द्वारा नीति निर्देशक तत्व के 48(क) में पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन एवं वन्य जीवों की रक्षा, तथा मौलिक कर्तव्यों के 51(क) में प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका सर्वधन शब्द जोड़े गये। जिसमें 48(क) राज्य के दायित्व एवं 51(क) नागरिकों के कर्तव्य को इंगित करता है। इससे पहले भी कई राज्यों ने पर्यावरण के लिए कदम उठाये हैं, जैसे महाराष्ट्र जल प्रदूषण निषेध कानून 1969, उड़ीसा नदी प्रदूषण निषेध कानून 1953। किन्तु ये प्रयास छोटे ही थे। 1972 के बाद भारत सरकार इस बारे में सजग हुई। वन्य जीव संरक्षण कानून 1972, जल प्रदूषण नियंत्रण व रोकथाम कानून 1974 आदि आए। फिर 1986 में पर्यावरण संरक्षण आया जिसमें पिछले कानून की कमियों को दूर किया। 1997 में नेशनल एनवायरमेंट अपीलेट आथॉरिटी कानून 1997 तथा जैव विविधता कानून 2002 लाया गया।

अब जनहित याचिका के साथ एनजीटी में जाने का भी विकल्प है। एनजीटी ने बेहद असरकारक फैसले लिए है, जैसे मेघालय में कोयला खनन पर रोक (अगस्त 2014) अभी हाल ही के दिनों दिल्ली में वायु प्रदूषण के स्तर को देखते हुए एनजीटी ने सभी राज्यों को अपने शहरों की एयर क्वालिटी इनडैक्स रिपोर्ट देने को कहा है। एनजीटी ने दिल्ली में 10 साल से पुराने डीजल वाहन एवं 15 साल से पुराने पेट्रोल वाहन पर रोक लगाने का आदेश दिया है। इसने रेलवे स्टेशन पर, रेलवे कर्मचारियों व अधिकारियों को प्लेटफार्म की सफाई कराने व डस्टबिन रखने, वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट में कूड़ा भेजने का निर्देश दिया है तथा कई अन्य ऐतिहासिक फैसले जैसे बालू खनन पर रोक, प्लास्टिक प्रयोग पर प्रतिबंध आदि दिये हैं।

सूर्योदय की धरती : अरूणाचल प्रदेश की एक यात्रा

ऋजु पालिका रॉय, बसन्त कुमार सिंह एवं अरविंद प्रमाणिक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

सूर्योदय की धरती , अरूणाचल प्रदेश हमारे देश के उत्तरी–पूर्वी राज्यों में सबसे बृहत राज्य है, जो 83740 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है और 26'28'' से 29'30'' उत्तरी अक्षांश और 90'30'' से 97'30'' पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है। यह उत्तर में मैकमोहन रेखा से सुरक्षित है। इसके पूर्व में चीन और म्यांमार, पश्चिम में भूटान तथा दक्षिण में अपनी सीमा रेखा असम एवं नागालैण्ड से साझा करता है। यह मोनपास, शेरडुकपेन्स, निशि, हिल–मिरीस अपाता निसआदी, मिसमिस, नोक्टास, सिंगफोस, खास तीस इत्यादि पहाड़ी जनजातियों का निवास स्थान है। हमारे देश के उत्तरी–पूर्वी छोर का यह प्रांत 20 फरवरी को अपना स्थापना दिवस मनाता है। सम्पूर्ण अरूणाचल प्रदेश 11 नदियों से संप्रात है जिनमें कामेंग, सुबंश्री, सियांग, लोहित, तिड़ाप एवं दिबांग प्रमुख है। प्रारंभ में अरूणाचल प्रदेश के जिलों को नाम इन्हीं नदियों के नामों पर आधारित हुआ करता था। वर्तमान में पूरे राज्य को 16 जनपदों में बाँटा गया है। यहाँ की राजधानी ईटानगर को अपना यह नाम 14–15वीं शताब्दी में बने ''ईटा–दुर्ग'' के नाम से मिला था जिसके भग्नावशेष आज भी ऐतिहासिक धरोहर के प्रमाण के रूप में यहाँ मौजूद हैं। इस दुर्ग का निर्माण वर्तमान ईंटों के समतुल्य पत्थरों से ही हुआ है। अरूणाचल प्रदेश वैसे तो अपनी ऐतिहासिक, पुरातात्विक, धर्म एवं अनूठी संस्कृति के लिये विश्वविख्यात है किन्तु सबसे महत्वपूर्णहै यहाँ की जैव विविधता ।

हमारे सर्वेक्षण कार्यक्रम के अनुसार पापुमपारे जिले में राजधानी ईटानगर और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों तथा पश्चिम कामेंग जिले में सेसा एवं टिपी शामिल थे। किसी भी पर्यटक या आगंतुक को ईटानगर अथवा अरूणाचल प्रदेश के आन्तरिक भू–भागों की यात्रा के लिये ईनर लाइन परमिट लेना आवश्यक होता है यह व्यवस्था ब्रिटिशकाल से चली आ रही है जो आज भी जारी है। आज ईटानगर बहुत सारी आधुनिक सुविधाओं जैसे एक विकसित बाजार, अस्पताल, क्रीड़ा–स्थल तथा बैंकिंग की सुविधाओं से परिपूर्ण है और यहाँ के स्थानीय आदिवासी भी किसी नगर के निवासी की तरह ही सभ्य और शिक्षित हैं किन्तु हमें यह देख कर काफी दुःख हुआ कि अव्यवस्थित नगरीकरण ने इस शहर को इमारतों के जंगल में परिवर्तित कर दिया है जिसके कारण इसने अपनी हरियाली को प्रचुर मात्रा में खोया है। इसके बाबजूद यहाँ एक सुव्यवस्थित इंदिरा गाँधी पार्क और उससे लगी नर्सरी भी है जिसमें कुछ औषधीय, दुर्लभ एवं विरल पौधों को संरक्षित किया गया है। राज्य वन अनुसंधान संस्थान (एसएफआरआई) चिंपु, अरूणाचल प्रदेश की पादप विविधता के अध्ययन एवं प्रलेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ एक सुव्यवस्थित पादपालय भी है, जिसमें स्थानीय पादप नमूनों का

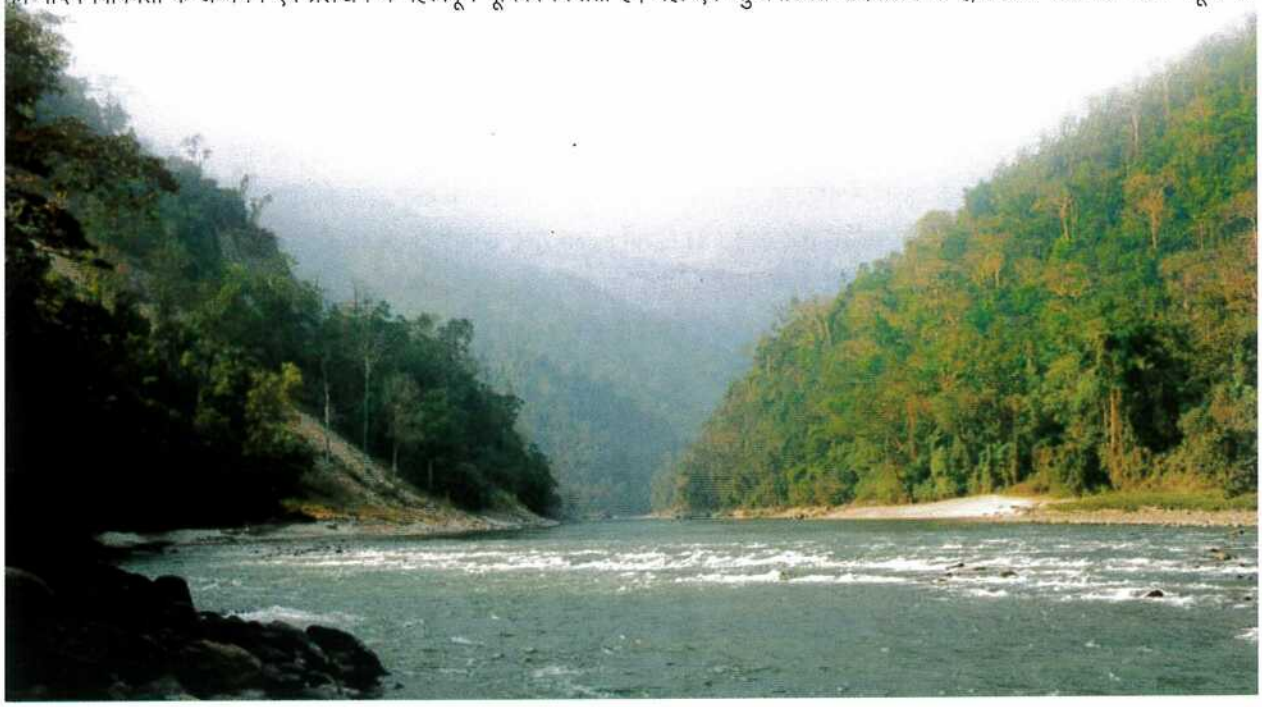

1. राज्य वन अनुसंधान संस्थान (एसएफआरआई) चिंपु में बांस एवं बेंत की कलाकृतियाँ, 2. अरूणाचल प्रदेश का राज्य पशु मिथुन

एक समृद्ध संग्रहण भी है। इसके अतिरिक्त यहाँ पादप विविधता से जुड़ी कई पुस्तकें भी पुस्तकालय में संग्रहित की गई हैं, इसी में बाँस की विभिन्न प्रजातियों के नमूनों एवं बेंत से बनी विभिन्न हस्तशिल्पों को भी संग्रहित किया गया है। निशि हेरिटेज साइट अथवा सुप्रसिद्ध गंगा झील पहाड़ पर स्थित प्राकृतिक झीलों में अद्वितीय है, जो ब्रायोफाइट, टेरिडोफाइड, आवृतबीजीय पौधों के साथ ही तरह–तरह की तितलियों और पक्षियों का भी घर है। अरूणाचल प्रदेश की सुंदरता हमें तब अनुभव हुई जब हम इसकी राजधानी से बाहर निकले और हमने यहाँ के पहाड़ी आदिवासी पुरूषों के वैभवशाली स्वरूप को देखा, कमर पर बेंत की रस्सियों की लड़ी, मस्तक पर सुसज्जित हार्नबिल पक्षियों की चोंच न केवल उनकी अनूठी संस्कृति का परिचय करवा रही थी अपितु एक रहस्यात्मक स्वरूप को भी प्रदर्शित कर रही थी। ये हमारी कल्पना के भी परे है कि इस रूपरेखा के लोग आज भी इस दुनिया में हैं, जो हमारे इतने करीब होकर भी हमसे इतनी दूर हैं, जिनके लिये मानवीय सभ्यता का विकास कोई मायने नहीं रखता। हम असम के तेजपुर से होते हुये अपने अगले पड़ाव पश्चिमी कामेंग जिले में बसे टिपी की ओर अग्रसर हुये। रास्ते में पश्चिमी कामेंग के द्वार कहे जाने वाले भालुकापोंग से प्रबल कामेंग नदी ने टिपी पहुँचने तक हमारा साथ दिया, प्रतित हो रहा था जैसे नदी के साथ साथ वन–उपवन भी हमारे साथ साथ चल रहे हो। अरूणाचल प्रदेश की भौगोलिक बनावट ही कुछ इस प्रकार है कि इस राज्य के किसी भी जिले में पहुँचने के लिये असम से होकर ही गुजरना पड़ता है। हमने टिपी आर्किडेरियम का परिदर्शन किया, एक ही स्थान पर अनेक आर्किड जातियों जैसे *सिम्बीडियम, पेफियोपेडिलम, डेन्ड्रोबियम, वनिला, इरिया, लिपेरिस* जैसे बहुरंगी आर्किडों का अद्वितीय संग्रहण है। यहाँ के आर्किडों में भरे प्रकृति के विविध रंगों की छटा देखकर किसी का भी मन मंत्रमुग्ध हो जायेगा। आर्किडों को यहाँ के विशाल वृक्षों के साथ भी बांधकर रोपित किया जा रहा है जिनकी नियमित रूप से देखभाल की जाती है। कामेंग नदी पखुई बाघ अभयारण्य और विश्राम गृह परिसर के बीच से होकर बहती है। यहाँ से अधिकतर लोगों का हिरन, हाथी और कभी कभी बाघ भी नदी किनारे दिख जाते हैं। नदी निरन्तर अपनी गर्जना के साथ चट्टानों के बीच से बहती रहती है। सूर्यास्त के साथ ही हमने इस जगह के असल रोमांच को अनुभव किया, ठंड के चलते हमने खिड़कियों को बंद कर दिया किन्तु कांच की सतह पर हवा की थपकियाँ हमें चौंका रहीं थीं। उस अंधेरी रात में तब तक हमें जीवन का कहीं कोई निशान नहीं दिख रहा था जब तक कि हमनें अपनी टार्च से पखुई बाघ अभयारण्य में जंगली जानवरों की चमकतीं आखों को न देख लिया। अगले दिन हम उसी रास्ते से सेसा आर्किडेरियम पहुँचे। मेघाच्छादित वह दिन भी आर्किड पुष्पों के रंगों को फिका नहीं कर पा रहा था। रास्ते के दोनों ओर अधिपादपों, आर्किड, पेड़ नुमा पर्णांग एवं केले की वन्य जातियाँ प्राकृतिक सुंदरता का बोध करा रहीं थी। लौटने के दौरान मिर्सिनेसी कुल के पौधों की तलाश में हम एक पथरीले मार्ग की ओर मुड़े लेकिन यह देख कर हमें काफी निराशा हुई कि निर्माण कार्य के लिये बहुत सारे पेड़ों जिनमें से कुछ औषधीय पौधे भी थे, काट दिये गये थे। ऐसे ही कार्यों ने प्रकृति को विध्वंसता की ओर ढकेल दिया है, निर्माण कार्यों के कारण पौधे की पत्तियों पर धूल की मोटी चादर बिछी हुई थी।

सही मायनों में अरूणाचल प्रदेश की यात्रा तब तक अधूरी है जब तक कि यहाँ के जंगलों में जंगली गाय (मिथुन), हार्नबिल (धनेश पक्षी) या गिब्बन को न देख लिय जाये। मिथुन एक अर्ध पालतू जीव है जिसका यहाँ के दैनिक जनजीवन एवं अर्थव्यवस्था में बहुत महत्व है, यह यहाँ के लोगों की सांस्कृतिक एवं सामाजिक धरोहर का अभिन्न अंग भी है। इसी कारण मिथुन को अरूणाचल प्रदेश के राज्य पशु होने का गौरव भी प्राप्त है।

अगले दिन हम ईटानगर और गोवाहाटी होते हुये कोलकाता वापस लौट आये और अरूणाचल प्रदेश की यह यात्रा हमारे मन मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गई ।

प्रो. एच. पी. गांधी (1920 – 2008) : भारतीय डायटमोलोजिस्ट

आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

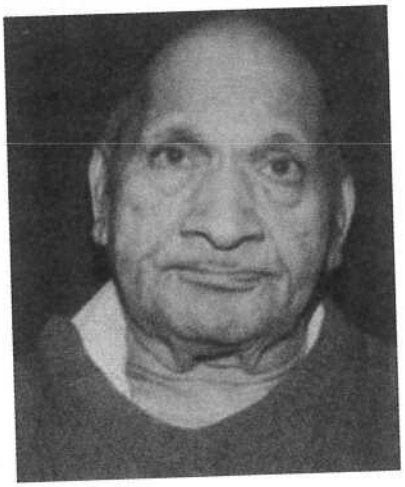

प्रो. एच. पी. गांधी
(1920 – 2008)

प्रोफेसर हेमेन्द्र कुमार पृथ्वीराज गांधी का जन्म 20 अगस्त 1920 को प्रतापगढ़ राजस्थान में हुआ था। इनकी प्रारंभिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्रतापगढ़ में ही हुई। तत्पश्चात् स्नातक तथा स्नातकोत्तर की शिक्षा वनस्पति शास्त्र में विल्सन महाविद्यालय मुंबई विश्वविद्यालय से 1949 में प्राप्त की। वहाँ पर प्रो. एच. पी. गाँधी को महान शैवालविद् इला गोनजालविस के साथ शैवाल पर कार्य करने का मौका मिला और इस दौरान उन्होने मुंबई तथा सेलसेट द्वीप समूह के विभिन्न जलाशयों पर कार्य किया। शुरूआत में उन्होंने शैवाल वर्गीकरण, मौसमी विकास, कालचक्र, पारिस्थितिकी विषयों में कार्य किया तथा उसी कार्य के दौरान विशेष आकृति तथा प्रकृति में प्रचुर मात्रा में पाया जाने के फलस्वरूप डायट्मस उनकी रूचि का केंद्र बने ! प्रो. गाँधी ने अपने स्नातकोत्तर शोधकार्य में ही डायट्म की 10 नयी जातियों, 21 नये प्रभेदों तथा 40 नये रूपों का विवरण प्रस्तुत किया तथा 1952–1954 में उन्होंने मुंबई तथा सेलसेट द्वीपों से डायट्मस पर आधारित 3 शोध पत्र प्रकाशित किये।

1949 की शुरूआत में गांधी की नियुक्ति एल्फिस्टोन कॉलेज मुंबई में व्याख्याता के रूप में हुई। जिसके बाद वे कर्नाटक विश्वविद्यालय तत्कालीन कर्नाटक कॉलेज, धाडवाड़ में जुलाई 1949 में तथा एम. एन. कॉलेज विसनगर गुजरात में अगस्त 1949 एवं आई. वाई. कॉलेज मुंबई में नवम्बर 1949 में सहायक व्याख्याता के रूप में नियुक्त किये गये। फिर राजाराम कॉलेज कोल्हापुर में कुछ ही दिन के कार्यकाल के बाद जून 1951 में वे कर्नाटक कॉलेज में वापसी आये। इसके बाद 1956 में बाम्बे प्रेसिडेंसी के दो हिस्सों में विभाजन के फलस्वरूप गांधी जो कि मराठी नहीं थे उनका स्थानांतरण फिर जे. जे. साइंस कॉलेज गुजरात में कर दिया गया। उनकी स्पष्टवादिता के कारण उनकी सात साल के शुरूआती सेवाकाल में उनके कई स्थानांतरण हुए, परन्तु डायट्म अध्ययन में उनकी विशेष रूचि के कारण उन्होंने उसी दौरान पश्चिम और दक्षिण पश्चिम, भारत के कई सारे जालाशयों से डायट्म का संग्रहण किया। वे वर्ष 1980 में जे. जे. साइंस कॉलेज के प्राचार्य पद से सेवानिवृत हुए। अनुसंधान कार्य में साधनों की कमी तथा प्रशासनिक कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अपने डायट्म शोध को जारी रखा। जो आज और आने वाली पीढ़ी के लिये एक मिसाल है। प्रो. गांधी का शोध कार्य डायट्म वर्गीकरण, डायट्म पारिस्थितिकी तथा बॉयोस्ट्रेटिग्राफी के क्षेत्र में केन्द्रित था। उन्होंने 35 से अधिक शोधपत्रों को प्रकाशित किया। जिसमें उन्होंने डायट्म का विस्तृत विवरण खास कर उच्च श्रेणी के डायट्म के रेखा चित्रों को प्रस्तुत किया। उनका ज्यादातर शोधकार्य एवं संग्रहण महाराष्ट्र और कर्नाटक से था, उन्होने अपने पर्यवेक्षक इला गोनजालविस के साथ मुंबई तथा सेलसेट द्वीप समूह के डायट्म को 1952, 1953, 1954 में प्रकाशित किया। इसके अलावा उन्होंने इस क्षेत्र की डायट्म विविधता पर 1960, 1962 में अपना शोधपत्र प्रकाशित किया। उनके शोधकार्यों ने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय शोधकर्त्ताओं में प्रसिद्धी दिलाई। उसके बाद उन्होंने दक्षिण पश्चिम भारत के कई सारे क्षेत्रों जैसे– कोल्हापुर, (1956, 1957, 1958, 1959) लोनावाला पर्वत (1962), धारवाड़ (1956, 1959), मैसूर (1958, 1959), प्रतापगढ़ (1955) एवं अहमदाबाद (1959, 1960, 1961, 1962, 1964, 1967) पर अपने शोध ा कार्य को विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। कर्नाटक स्थित प्रसिद्व जोग जलप्रपात (गैरशोपा जलप्रपात) के डायट्म विविधता पर उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है। जो उन्होंने जनरल ऑफ रॉयल माइक्रोस्कोपिकल सोसाइटी तथा नोवा हेडविजिया जैसे विश्व प्रसिद्व वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित किये हैं। 1998 में गांधी ने मध्य गुजरात के स्वच्छ जल के डायट्म पर पुस्तक लिखी जो आज भी काफी प्रचलित है। अपने प्रकाशित शोध पत्रों में गांधी ने 292 नए डायट्म टैक्सा का वर्णन किया है। इसमें कई सारी जातियाँ, प्रभेद तथा रूप शामिल हैं इसके साथ ही उन्होंने कई नामों का नया संयोजन भी किया है। जो निम्नलिखित वंशों में शामिल है– *एकनैनथस* 17, *एनोमोनिस* 2, *कैलोनिस* 8, *सीरैटोनिस* 2, *साइक्लोटेल्ला* 4, *सिम्बेला* 8, *डिप्लोनिस* 3, *यूकैकोनिस* 1, *यूनोटिया* 23, *फ्रेजिलेरिया* 7, *फ्रस्टूलिया* 5, *गोमफोनीमा* 30, *हैंसचिया* 8, *मैस्टोग्लोइया* 2, *नैवीकुला* 64, *नीडियम* 13), *निसचिया* 23, *ओपेफोरा* 1, *पिन्नूलेरिया* 40, *प्लीरोसिग्मा* 3, *रेफोनिस* 1, *स्टैरोनेसिस* 13, *सूरीरेल्ला* 10 और *सिनेडरा* 4। इन्होंने विशेषकर वंश पिन्नूलेरिया में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

इस अवधि में वे पत्राचार के माध्यम से उस समय के विश्व के प्रमुख डायट्म शोधकार्ताओं जैसे हस्टड, राउण्ड, चौलनौनकी, पैट्रीक तथा लुण्ड इत्यादि के भी संपर्क में भी रहे हैं। डायट्म के अलावा वे 1958 में अहमदाबाद एवं आस–पास के क्षेत्रों से फूलदार पौधों तथा 1974 में जूनागढ़ के ऑफिओंग्लोसम पर भी वैज्ञानिक शोध पत्र को प्रकाशित किया। प्रो. गाँधी भारत के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने बताया कि एककोशकीय जीव का अपना जैव–भौगोलिक क्षेत्र होता है। उन्होंने पश्चिम घाट के जलाशय से 100 से अधिक स्थानीय डायट्म का वर्णन किया।

सेवानिवृत होने के बाद गुजरात विश्वविद्यालय ने उनसे सब हिमालियन रेंज पर डायट्म के ऊपर पेलियोइकोलॉजिकल पर शोध के लिए आग्रह किया जिसको स्वीकार कर उनके द्वारा कश्मीर के बलतार क्षेत्र से 21 नये जीवाश्म डायट्स की जातियों तथा 10 नये प्रभेदों का विवरण 1983 तथा 1986 में प्रकाशित किया गया। डायट्म को और भी करीबी रूप से समझने के लिए उन्होंने स्कैनिंग इलेक्ट्रोनिक माइक्रोस्कोप का भी इस्तेमाल किया। लगभग पांच दशकों तक स्वच्छ जलीय डायट्म पर शोध करके महत्वपूर्ण योगदान देने की वजह से उन्हें भारतीय शैवाल के शोध इतिहास में "भारतीय स्वच्छ जलीय डाइटमोलोजी का पिता" कहा जाता है।

प्रो. गांधी के सम्मान में 3 जातियों का नामकरण विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा किया गया जिसमें डायट्म की 2 जातियाँ क्रमशः *यूनेटिया गांधी* पी. टी. सरोडी एवं एन. डी. कामट तथा *नेवीकुल्ला गांधी*, मेनेस्टर तथा 1 नील हरित शैवाल *लिंगवीया गांधी* एन. डी. कामट हैं।

उनकी मृत्यु 5 जून 2008 को उनके निवास स्थान जूनागढ़ गुजरात में हुई। प्रो. गाँधी ने अपने संग्रह किये गये डायट्म के नमूने, स्लाइड्स, साहित्य, रीप्रिंट, रिपोर्ट, किताबें, छायाचित्रों तथा रेखाचित्रों को सहयाद्रि पर्यावरण सूचना प्रणाली, पश्चिमी घाट जैविक विविधता केन्द्र, पारिस्थितिकी विज्ञान केन्द्र, भारतीय विज्ञान संस्थान बंगलुरू को दान में दे दिया था। प्रो. गाँधी के इस संग्रहण को पारिस्थितिकी विज्ञान केन्द्र के डायट्म संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। उनका संग्रहण विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप के युवा डायट्म शोधकर्त्ताओं के लिए न केवल प्रेरणादायी अपितु शोध आदर्श भी है। अपने अमूल्य योगदान से प्रो. गाँधी शोध छात्रों, शिक्षकों और प्रकृतिविदों के लिए सदियों तक प्रेरणा स्त्रोत बने रहेगें।

घर उपवन में पेड़ लगाओ,
चारों ओर हरियाली लाओ।
सभी प्रदूषण दूर भगाओ,
अपना जीवन स्वस्थ बनाओ।।

सायनोजीवाणु की सर्वव्यापी विविधता

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली है ।
यह नभ, जल, आकाश, सभी जगह छाये हैं।
झरने, नदी, नाले, पोखरों, जलाशयों, गड्ढों, बर्फ से,
लेकर समुद्र की गहराइयों तक समाये हैं ।
चट्टानों, मिट्टी, खेत–खलिहानों, दीवारों, खंडहरों से।
लेकर हवा तक में अपना आधिपत्य जमायें हैं,
सायनोजीवाणु की तो बात निराली है।

प्रकृति के सबसे प्राचीन सायनो जीवाणु ।
सबसे पहले प्रकाश संश्लेषी कहलाएं हैं,
इसीलिये धरती के वास्तुविद एवं माता पिता का।
पद पाये हैं और प्रकृति के सबसे अधिक,
ऑक्सिजन उत्सर्जित करने वाले सायनो जीवाणु,
जीवन दायिनी प्राणवायु के संघनित्र कहलाये हैं ।।
सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली है।

इतना ही नहीं पारिस्थितिकी तंत्र की खाद्य श्रृंखला,
की ये प्रथम उत्पाद की रचनायें है और,
यह जीव–जन्तुओं, प्लवक, मछलियों ।
मनुष्यों तक सभी का संपूर्ण भोजन बन पाये हैं ।।
यह प्रोटीन, वसा, विटामिन से लेकर ।
औषधियों अपार, भंडार बन पाये हैं ।।
सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली है ।

यह एड्स, कैंसर, क्षय रोग जैसे रोगों के,
उपचार में आशा की किरण बन कर ।।
सामने आये हैं इसीलिये संजीवनी का
पद पाये हैं, यह जल के प्रदुषकों को ।
अवशोषित करके अपने अंदर समाहित कर ।
जल को स्वच्छ करने में भी प्रवीण बन पाये हैं ।।
सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली है ।

यह मानव के जीवित शरीर के भीतर से,
लेकर मरणोपरान्त तक अपनी पहचान बनाये हैं ।।
वनस्पति विज्ञान से लेकर अन्य विज्ञान की ।
शाखाओं तक, विधि विज्ञान की ।
शाखाओं तक, विधि विज्ञान से लेकर अपराध,
अनुसंधान तक अपनी पकड़ बनाये हैं।
सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली है ।।

पृथ्वी का उष्मायन कम करने वाली,
ये अद्‌भुत आकर्षक रचनायें हैं ।।
जैव ईंधन, जैव उर्वरक, पारिस्थितिकी मित्र एवं,
सौंदर्य प्रसाधन में भी अपना सशक्त भूमिका निभाये हैं ।।
तभी तो सर्वव्यापी होकर इतने विविध हो पाये हैं ।
सायनोजीवाणु की तो बात ही निराली हैं ।।

यदि बचे रहेंगे बाघ वनों में

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

यदि बचे रहेंगे बाघ वनों में, हरियाली उन वनों में, व्याप्त रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूटपाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी।।

कभी सामंती दौर के शासन में, वन्य जीवों का भरपूर शिकार हुआ ।
कहीं बलवर्द्धक औषधियों प्रति, कहीं संग्रहालय हेतु व्यापार हुआ।।
हुआ दौर खत्म, भर गये जख्म, जन कोशिश से बची प्रजाति रहेगी।
वरना अति दोहन, लूटपाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी ।।

यों वन, बाघ, वनस्पति, बादल, वर्षा, सभी एक–दूजे के संपूरक हैं।
धरती की पर्यावरण परिस्थितिकी हित, जंगल की बड़ी जरूरत है।।
वो अद्‌भुत, आकर्षक, अतुल्य जीव से, जंगल को सत्ता प्राप्त रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूट पाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी ।।

जग, जंगल, जमीन, पशु, पक्षी, पौधों से, कुछ कला सीख ले जीने की।
जिन्हें संग्रह प्रति है, कोई शौक नहीं, संतुलन से खाने–पीने की ।।
यों धरती पर पर्यावरण, प्रकृति संग, सदियों–सदियों सौगात रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूट पाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी ।।

यों कुदरत के अनोखे बाघ का, जग ने जीना दुश्वार किया।
उनके भोजन, पानी, आश्रय पर, जन भली भांति अधिकार किया।।
वहाँ संरक्षण, सहयोग, संतुलन विधियां, सबके हित पर्याप्त रहेंगी ।
वरना अति दोहन, लूटपाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी।।

वो वन्य जीव भी निज सुविधा प्रति, मानव बस्ती में आये जब–तब ।
अपना हक पाने के लिये ही, अक्सर मानव से टकराये तब–तब ।।
वहां संरक्षित क्षेत्रों में, अतिक्रमणों पर, होती ऐसी वारदात रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूटपाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी।।

बाघों की उपस्थिति से धरती पर, अब तक है जंगल बचा हुआ ।
चीतल, बारहसिंगे, सांभर, वानर से, जंगल रहस्य है रचा हुआ ।।
वैज्ञानिक अन्वेषण, शोध, खोज से, जीवों का सही अनुपात रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूटपाट से,जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी।।
करें धन्यवाद जन, प्रकृति शक्ति को, जिसने अनुपम उपहार दिया ।
सुखदायक, जीने लायक धरती पर, जल, वायु, वृक्ष, आहार दिया ।।
उपभोक्ता मानव के विवेक से, धरती पर प्राकृतिक जमात रहेगी ।
वरना अति दोहन, लूटपाट से, जैव विविधता की ठौर समाप्त रहेगी ।।

पर्यावरण

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पर्यावरण बचाओ देश बचाओ,
यह महज एक नारा है।
सच बतलाओ क्या हमने तुमने,
इसे हृदय से अपनाया है ।

वनों से यूँ पेड़ न कटते,
वन जीवन अस्त व्यस्त न होता ।
लोगों का जीवन अस्त व्यस्त न होता,
भ्रष्टों की यूँ जेब न भरते।

नीतियाँ न रहती सिर्फ कागजों में,
जन – जन के मानस में होता ।
नदियों, जलाशयों का स्वच्छ जल,
प्रदूषित हो काला न होता ।

कंक्रीटों के जंगल न होते,
कारखानों का शोर न होता।
बिन पानी धरती न फटती,
अकारण मानव त्रास न होता।

सवा सौ करोड़ का भारत अपना,
इस वेदना से बच जाता ।
अगर इस नारे को हमने,
सच्चे दिल से अपनाया होता।

भारत की विविधता

संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

ये कहानी है एक अद्‌भुत देश महान की,
माथे पे ताज कश्मीर का, चरणों में सागर–ए–हिंद हिन्दुस्तान की
डेलफिनियम, जैन्शियाना, पोटेन्टिल्ला, प्रिमुला जैसे पुष्पों से,
भरा हुआ है हिमालय फूलों की घाटी जैसे दृश्यों से,
कुदरत ने पर्वतों की गोद में विस्तृत मैदान बिछायें हैं,
जो कश्मीर के मर्ग और गढ़वाल में बुग्याल कहलाये हैं ।

नंदा, त्रिशूल, नीलकंठ, कामेत शिखर,
गंगोत्री, ससायनी, सियाचीन हिमनद
संवारते हैं जैव विविधता कई इकाइयों में बंटकर,
चिनारों के दरख्तों से झरती बर्फ और बूंदें टपककर,
बांज, बुरांश, देवदार, कैल, मोरू, भोजवृक्ष और खरसू वन,
विषम परिस्थितियों में भी यहाँ महकते हैं उपवन,
शीत में हिमाच्छादित होता है कश्मीर से हिमाचल,
गंगा यमुना सदानीरा सी बहतीं हैं कल–कल
आड़े तिरछे पहाड़ों में किरणें आँख मिचौली करती हैं,
तो एक ओर पांच नदियाँ मिलकर पंजाब को सींचा करती हैं,
ये कहानी है एक अद्‌भुत देश महान की,
माथे पे ताज कश्मीर का, चरणों में सागर–ए–हिंद हिन्दुस्तान की।

दोआब में फैली है गंगा–जमुनी संस्कृति
साल, रोहणी, सेमल, सिरिस वनों से संवरी है प्रकृति,
जैव विविधता को यहाँ संरक्षित करती हैं अनूठी परम्परायें,
आओ बढ–चढ़ कर हम भी अपना दायित्व निभायें,
और पर्यावरण प्रदूषण से अपनी धरती को मुक्त बनायें
वनों से हम हैं, जल है और जीवन है यहाँ
ऐसी धरती और ऐसी विविधता बताओ और है कहाँ ?
नमन करें इस माटी को जय बोलें हिन्दुस्तान की,
माथे पे ताज कश्मीर का, चरणों में सागर–ए–हिंद हिन्दुस्तान की।

अपने गर्भ में अयस्कों को छिपाये है सतपुड़ा और संथाल,
सुन्दरवन के वायु शिफों को संजोये है गांगेय क्षेत्र बंगाल
सौंधी–सौंधी महकती है माटी यहाँ
दार्जिलिंग असम के चाय के बागानों में,
रंग बिरंगे आर्किड–फूल खिले हैं यहाँ के उद्यानों में,
असम, अरूणाचल, नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर
मेघालय और मिजोरम सात बहनें हैं जो पूरब की,
ये धरती है विविध रूप रंगों से सजी
सबसे पहले रोशन होती जहाँ किरणें प्यारे सूरज की,
गाथायें अनेक लिखी हैं इसकी गौरव और शान की
नमन करें इस माटी को जय बोलें हिन्दुस्तान की

बनाओ सतुंलन

भरत गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

हम सब हैं प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन।

अगर होगा असतुंलन तो मिट जायेंगे हम
याद करो इतिहास क्या यही असतुंलन
नहीं है सिंधु सभ्यता का विनाश

हम सब है प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन।

गुजरात का भूकम्प, उत्तराखण्ड की बाढ़
तटवर्ती क्षेत्रों में सुनामी
क्या नही है प्रकृति के असतुंलन की निशानी ?

हम सब है प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन।

मौसम की ऋतुओं में बदलाव
कर रहा फसलों को बर्बाद
हो रहा किसान बेबस और लाचार
क्या नहीं है असतुंलित प्रकृति का व्यवहार ?

हम सब है प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन ।

कहते है इतिहास खुद को दोहराता है
लेकिन जब प्रकृति को मजबूर किया जाता है
तो ऐसा हो जाता है।

हम सब है प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन ।

आज जब भारत बढ़ रहा प्रगति की ओर
तो ऐसी समावेशी प्रगति की है आवश्यकता
सभी रहे खुश और बनारहे प्रकृति सतुंलन ।

हम सब है प्रकृति के अंग
बनाओ सतुंलन सतुंलन सतुंलन ।

धरा की करूण पुकार

देवेन्द्र सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

ऐसा क्या हुआ जो आज धरती मैया रो रही है ?
क्यूँ आज हम चैन की नींद सो रहे हैं ?
क्यूँ आज देश का किसान बेमौत मर रहा है ?
आखिर वो अपनी धरती मैया पर इतना जुल्म क्यों कर रहा है?
आखिर हमारे कृषक मित्र क्या कर रहे हैं ?
क्यूँ वो गुणवत्ता के बजाय, पैदावार पर ध्यान दे रहे हैं?
आखिर कौन फैला रहा है ये भरम ?
क्यूँ हमारे कृषक मित्र उठा रहे हैं, ये विनाशक कदम ?
इन्हें तो पता है कि धरती उनकी माता है,
फिर क्या कोई पुत्र अपनी माता को रासायनिक विष पिलाता है !
रासायनिक विष के प्रभाव से तू भी न बच पायेगा,
आखिर तू भी तो इसी रसायन मिश्रित अन्न को खायेगा,
भारत की इस शस्य–श्यामला भूमि को तो मत उजाड़,
प्रदूषण के विष से प्रकृति के संतुलन को तो मत बिगाड़,
उठ अब जाग ऐ मेरे देश के किसान,
हो सके तो मेरा बस मेरा एक कहना मान,
खेती में रसायनों के प्रयोग को बंद कर,
प्रकृति के साथ इस खिलवाड़ का आज ही अंत कर।
लौट चल फिर से पुरानी संस्कृति की ओर,
फिर रूख कर अब जैविक और कार्बनिक कषि की ओर,
भारत की हरी–भरी भूमि को बचाना, कर्तव्य है हमारा,
आओ फिर से मिलकर सत्य करें हम
"जय जवान, जय किसान" का नारा।

स्वच्छ निर्मल भारत

रवि प्रसाद
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

मैनें कदम बढ़ा दिया।
मैनें कदम बढ़ा दिया।।
मैनें दीप जला दिया।
मैनें दीप जला दिया।।

स्वच्छ होगा मेरा भारत।
स्वस्थ होगा मेरा भारत।
निर्मल होगा मेरा भारत।
रोगमुक्त बनेगा मेरा भारत।
खुशहाल बनेगा मेरा भारत।।

गन्दगी का नाश होगा।
रोगाणुओं का विनाश होगा।
इबोला–ड़ेंगू का सर्वनाश होगा।।

खुले शौच की सोच न होगी।
अंधेरे की खोज न होगी।
बदनामी वाली बोझ न होगी।
अब तो घर–घर शौचालय होगा, महकी हर सुबह होगी।।

दुर्गन्ध का दूर तक नाम न होगा।
सुलभ, कचरा पात्र हर स्थान होगा।
वैदिक गुणों का व्यायाम होगा।
नारीयों का सच्चा सम्मान होगा।
जन–जन का भारत को सलाम होगा।

नित्य–नयन एक सर्वोच्च पहचान होगा।
पर्यटकों का हृदय हिन्दुस्तान होगा।।

कचरा फैलाने वालों का बुरा अंजाम होगा।
कूड़ा–करकट का सही आयाम होगा।
कचरा गन्दगी नहीं, ऊर्जा का नया नाम होगा।
सड़कों की मजबूती कचरा–प्लास्टिक का काम होगा।।

भूल गये क्या तुम?
याद नहीं क्या अब ?
माँ जब सुबह उठती है।
घर आँगन सब चमक उठती है।।

दीवाली का दीपक प्रकाश फैलाये।
घर आँगन सब–पर चूना चढ़ जाये।
स्वच्छता तो हिन्द की चीर है।
निर्मल अविरल गंगा पवित्रता की नीर है।।

गाँधी की धरा ऊर्जावान होगी।
नई दिशा नई पहचान होगी।।

मैनें कदम बढ़ा दिया।
मैनें कदम बढ़ा दिया।।
मैनें दीप जला दिया।
मैनें दीप जला दिया।।

पौधे की दास्तान

संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,देहरादून

फूल ने पत्ते से कहा...

इतना सुन्दर होने पर भी,
मेरी कोई कद्र नहीं।
कोई भी तोड़ लेता है मुझे
फेंक देता है यूँ ही कहीं।

इस पर पत्ते ने भी अपना दुखड़ा रोया...

तुम तो फिर भी खुश नसीब हो,
तुम्हें सब देखते हैं, मुझ से नजर फेरते हैं,
तुम्हें तोड़ने के बाद, ठूंठ सा रह जाता हूँ।
फूल–पत्ते की दास्तान सुन...

जड़ ने संदेशा भेजकर दोनों को समझाया...

प्रकृति ने सबको एक निमित्त बनाया,
फूल को प्रभू ने –
सुन्दर और खुशबुदार बनाया,
और पत्ते तुम को–
प्रकृति ने सुन्दर आकार दिये,
तुम तो फूल के बिना ही अपनी पहचान बनाते हो,
अपनी बनावट, खुशबू से सबको रिझाते हो।
पर तुमने मेरे त्याग को कभी समझा ही नहीं,
मैं अदृश्य रह भी तुम्हारा पोषण करता हूं,
अपने दर्द को सीने में दबाये रखता हूँ,
बार–बार खुरपी की चोट सहने के बाद भी तुम्हें जिंदा रखता हूँ।

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार दास एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने नई दिल्ली में 17 अक्टूबर 2014 को राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) की शुरूआत की । राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक, स्वच्छ भारत मिशन के तहत एक पहल है। प्रस्तावित वायु गुणवत्ता सूचकांक आठ मापदंडों (पीएम 10, पीएम 2.5, नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फरडाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, ओजोन, अमोनिया और लेड) पर आधारित होगी ।
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार बेबसाइट)

2. संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन (यूएनडब्ल्यूडीओ) ने ओडिशा की चिल्का झील को उसकी प्राकृतिक सुंदरता और जैवविविधता के लिए दर्शनीय पर्यटन स्थल घोषित किया गया है। चिल्का झील भारत में ओडिशा के पूर्वी तट पर स्थित है । यह पूर्वी तट के साथ फैली नदी मुख स्वरूप की खारे पानी की एशिया की सबसे बड़ी झील है। (डिस्कवरी न्यूज)

3. भारत के पश्चिमी तट पर ऐसे दो नए शैवालों *उल्वा पश्चिमा* और *क्लाडोफोरा गोवानेन्सिस* की खोज की गई है जो शैवालों वातावरण से कार्बन डाई ऑक्साइड को अवशोषित करने की क्षमता रखते हैं । इससे स्वाभिक रूप से ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में मदद मिलेगी।
(जागरण जोश)

4. राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) ने 20 जनवरी 2015 को भारत में बाघों की स्थिति पर नवीनतम रिपोर्ट 2014 जारी की गई । 2010 में बाघों की संख्या 1706 थीं, जो वर्ष 2014 में बढ़कर 2226 हो गई। यह बढ़ोत्तरी 30.5 प्रतिशत है, रिपोर्ट में बताया गया है कि विश्व के 70 प्रतिशत बाघ भारत मे पाए जाते हैं। बाघों की यह गणना 18 राज्यों के करीब 378118 वर्ग किलो मीटर वन क्षेत्रों में कराया गया, सर्वेक्षण के अनुसार बाघों की संख्या कर्नाटक, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और केरल में बढ़ी है। कर्नाटक में 408, उत्तराखंड में 340, मध्यप्रदेश में 308, तमिलनाडु में 229, महाराष्ट्र में 190, असम में 167, केरल में 136 और उत्तर प्रदेश में 117 बाघ पाए गए हैं। वर्ष 2014 की बाघ आंकलन रिपोर्ट में कहा गया है, दुनिया में सबसे अधिक बाघ मुदुललाई–बांदीपुर–नगरहोल–वायनाड परिसर में हैं, वहाँ 570 से अधिक बाघ हैं. यह क्षेत्र कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में है । (जागरण जोश)

5. भारत के 'फ्रॉगमैन' कहे जाने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एस डी बिजू द्वारा मेढ़कों की सात नई प्रजातियों की खोज की गई ।
(बीबीसी हिन्दी)

6. वायु प्रदूषण और जलवायु का भारत के खाद्यान्न उत्पादन पर बुरा असर पड़ रहा है। देश में बढ़ते प्रदूषित कोहरे (स्मॉग) के कारण फसलों की संभावित उपज आधी रह गई है। वर्ष 2010 में जितनी फसल संभावित थी, वायु प्रदूषण के चलते उसकी पैदावार 50 प्रतिशत ही हुई है।
(जागरण जोश)

7. नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने 8 मई 2015 को दिल्ली में सभी घरों पर यमुना नदी को साफ करने हेतु मासिक पर्यावरण सुरक्षा भुगतान के रूप में कर लगाने का आदेश दिया है। (द हिन्दू दैनिक)

8. केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने 17 अप्रैल 2015 को वन्य जीवों के लिए ऑनलाइन निगरानी प्रणाली प्रारम्भ की है। इसके तहत एक वेब आधारित पोर्टल ऑनलाइन सब्मिशन एण्ड मॉनिट्रिंग ऑफ एनवायरमेंटल फोरेस्ट एण्ड वाइल्ड लाइफ क्लीयरेंस (ओएसएमईएफडब्यूसी) का संचालन प्रारम्भ किया गया है। (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार बेबसाइट)

9. साइंस पत्रिका में यह प्रथम बार प्रकाशित हुआ है कि विश्वभर के महासागरों में 245 हजार टन कूड़ा करकट डाला जाता है एवं करीब 8 मिलियन टन प्लास्टिक भी महासागरों में फेंका जाता है। इस प्रदूषण से विश्व के प्रमुख तटवर्ती क्षेत्रों को खतरा उत्पन्न होने की आशंका है।
(साइंस डेली)

10. चेन्नई स्थित भौगोलिक सूचकांक के अनुसार केले की चेंगालिकोडोन प्रजाति को जीआई–स्टेट्स दिया गया है। यह प्रजाति स्थानिक रूप से केवल केरल की चौऊन्नूर, पैजान्नूर, वाडाक्काचेरी, पुझाक्कल एवं ओल्लूकरा तालुकाओं में मिलती है। भारत में सर्वप्रथम जीआई–टैग कृषि उत्पाद के रूप में दार्जिलिंग की चाय को दिया गया था। (जर्नल नालेज टूडे बेबसाइट)

11. कोचीन अंतरराष्ट्रीय विमानपत्तन विश्व का सर्वप्रथम पूर्णतः सौर ऊर्जा संचालित विमानपत्तन का दर्जा मिला है। इससे इतनी मात्रा में कोयले की बचत होगी जो 30 लाख पेड़ों के समतुल्य है। (जागरण जोश बेबसाइट)

12. महाराष्ट्र सरकार ने भारत रत्न सचिन तेंदुलकर को बाघ संरक्षण योजना का नया ब्रांड एम्बेसडर मनोनित किया है।
(जर्नल नालेज टूडे बेबसाइट)

13. केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा नई दिल्ली में 5 जून 2015 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की वार्षिक पत्रिका वनस्पति अन्वेषण–2014 का विमोचन किया गया।जिसमें वर्ष 2014 के दौरान पुष्पीय पौधों, पर्णांगों हरितोद्भिदों, कवकों, लाइकेन, शैवाल एवं जीवाणुओं की 278 जातियों को भारतीय वनस्पतिजात (फ्लोरा) में समाहित किया गया है।
(वनस्पति अन्वेषण 2014)

14. संयुक्त राज्य अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी के द्वारा किये गये शोध में पृथ्वी पर कुल वृक्षों की संख्या 3 ट्रिलियन बताई गई है।
(टाइम्स ऑफ इंडीया बेबसाइट)

15. मेसाचुसेट विश्वविद्यालय, बोस्टन में कार्यरत भारतीय प्रोफेसर डॉ. कमल बावा को वर्ष 2014 के मिदोरी पुरूस्कार के लिये चुना गया है। ये पुरूस्कार प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता दशक 2011–2020 के उद्देश्यों की पूर्ति में किये गये उल्लेखनीय कार्यों के लिये दिया जाता है।
(बीबीसी हिन्दी)

16. भारत में वर्ष 2015–16 को जल संरक्षण वर्ष के रूप में मनाया जायेगा। जनमानस में पेयजल एवं नदी जल के संरक्षण को जागरूकता लाने का कार्य किया जायेगा। (जर्नल नालेज टूडे बेबसाइट)

17. भारत की प्रथम सौर ऊर्जा संचालित बाड़ (फेन्सिग) युक्त हाथी अभयारण्य को बंगलुरू, कर्नाटक में बनाये जाने की घोषणा की गई है। इस अभयारण्य को पशुओं के लिये कार्य करने वाली संस्था पेटा एवं बान्नेरघाटा जीव पार्क के संयुक्त तत्वावधान में स्थापित किया जायेगा।
(जागरण जोश)

18. 2 फरवरी 2015 को विश्व आर्द्रभूमि दिवस (वेट लैंड डे) के रूप में मनाया गया । इस वर्ष विश्व आर्द्रभूमि दिवस की थीम आर्द्रभूमि हमारे भविष्य के लिये (वेट लैंड फॉर अवर फ्यूचर) रखी गई है। 2 फरवरी 1971 को रामसर संधि की वर्षगांठ पर ये दिवस विश्वभर की आर्द्रभूमियों के संरक्षण और जागरूकता के लिये मनाया जाता है। भारत में आर्द्रभूमियों की संख्या 26 है। (द हिन्दू दैनिक)

19. 10 अगस्त 2015 को पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा स्कूल नर्सरी योजना का शुभारम्भ नई दिल्ली से किया गया । इस योजना के अंर्तगत स्कूलों में वृक्षारोपण को बढ़ावा देकर बच्चों का इससे जोड़ा जायेगा। (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार बेबसाइट)

20. भारत के जल पुरूष कहे जाने वाले श्री राजेन्द्र सिंह को प्रतिष्ठित स्टॉकहोम वॉटर अवार्ड–2015 के लिये चुना गया है। इस पुरूस्कार की घोषणा प्रतिवर्ष 22 मार्च को संयुक्त राष्ट्र के विश्व जल दिवस के अवसर पर की जाती है। श्री राजेन्द्र सिंह को भारत में जल संरक्षण के लिये जाना जाता है। (जर्नल नालेज टूडे बेबसाइट)

राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु

- सितम्बर 2014 में मुख्यालय एवं क्षेत्रीय केन्द्रों में हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। मुख्यालय में इस दौरान निबन्ध, वाद–विवाद, टाइपिंग, टिप्पण–आलेखन एवं प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं आयोजित की गई । प्रतियोगतियों में श्रेष्ट निष्पादन हेतु प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया।

- राजभाषा अधिनियम 1963 एवं राजभाषा नियम 1976 का अनुपालन तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में मुख्यालय एवं क्षेत्रीय केन्द्र सचेष्ट रहे।

- संसदीय राजभाषा समिति ने सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केन्द्र, गांगतोक का दौरा किया। समिति ने इस क्षेत्रीय केन्द्र का राजभाषा संबंधी कार्य संतोषजनक पाया । इस निरीक्षण दौरे के दौरान हमारे मंत्रालय से संयुक्त सचिव एवं निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण उपस्थित थे

- भारतीय वनस्पति की विभागीय पत्रिका 'वनस्पति वाणी–2014, वनस्पति अन्वेषण'–2014 एवं वनस्पति अन्वेषण के 125 वर्ष पत्रिकाऐं प्रकाशित की गई ।

- विभाग के क्षेत्रीय केन्द्रों में कनिष्ठ हिंदी अनुवादकों के पद सृजित किये गये एवं कई केन्द्रों में हिंदी अनुवादक की नियुक्तियां भी हुई ।

- कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, क्षेत्र–8 के अध्यक्ष होने के कारण सर्वेक्षण ने वार्षिक बैठक में भाग लिया।

- मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने 'प्रोत्साहन योजना' के तहत 10 कर्मचारियों को वर्षभर हिंदी में कार्य करने के कारण पुरस्कृत किया गया।

- हिंदी के उत्तरोतर प्रगति के लिए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अधिकारी एवं कर्मचारी सचेष्ट रहे ।

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें–

- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग,महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए–4 आकार के कागजपर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर (Double space) में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हो ।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class –वर्ग ,Order–गण,Family–कुल, Genus–वंश, Sub-species –उपजाति, Variety–प्रभेद, Form–रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम *तिरछे* (*italic*) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखाकिंत (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार–बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में आभार एवं संदर्भों का प्रयोग नहीं करें।
- लेख में सम्मिलित फोटो–प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नही करें ।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।

हमारे नवीन प्रकाशन

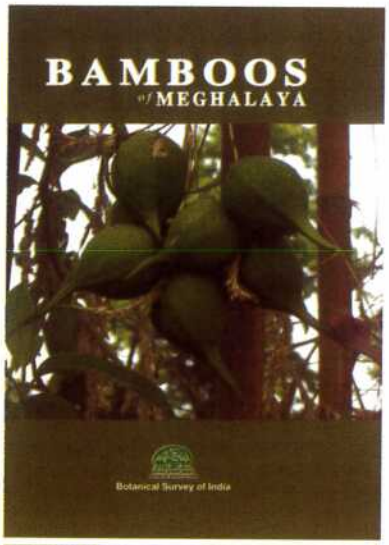

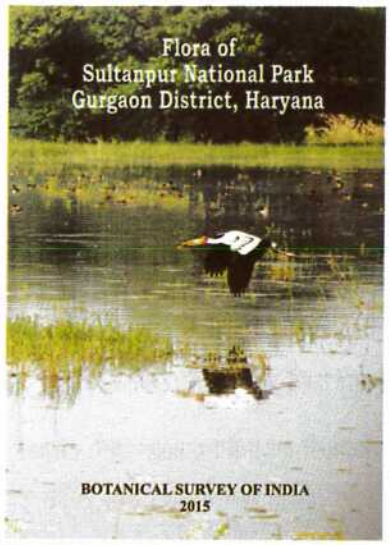

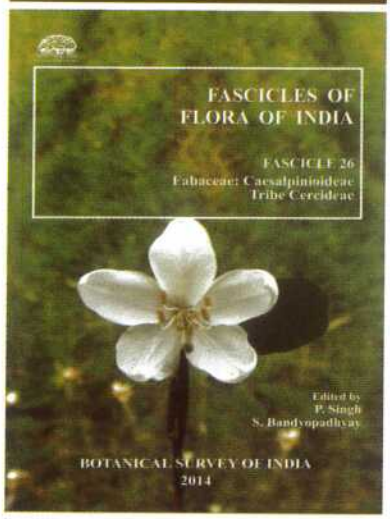

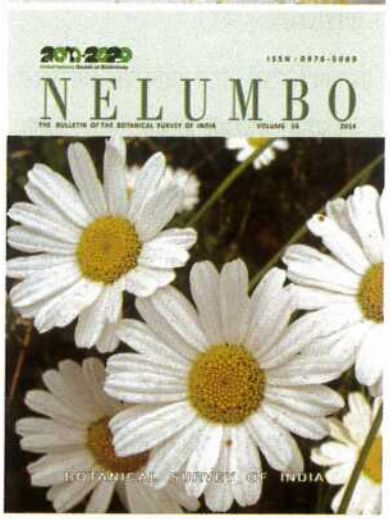

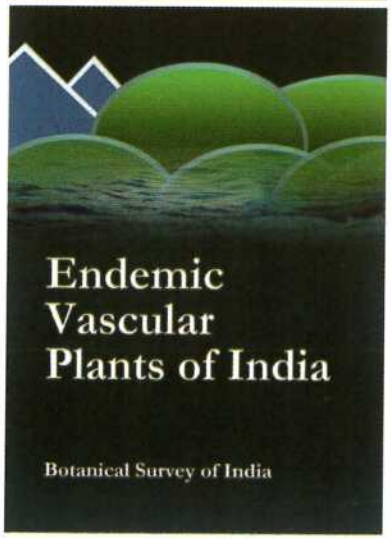

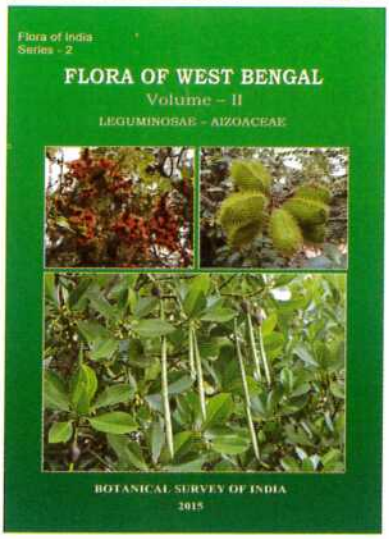

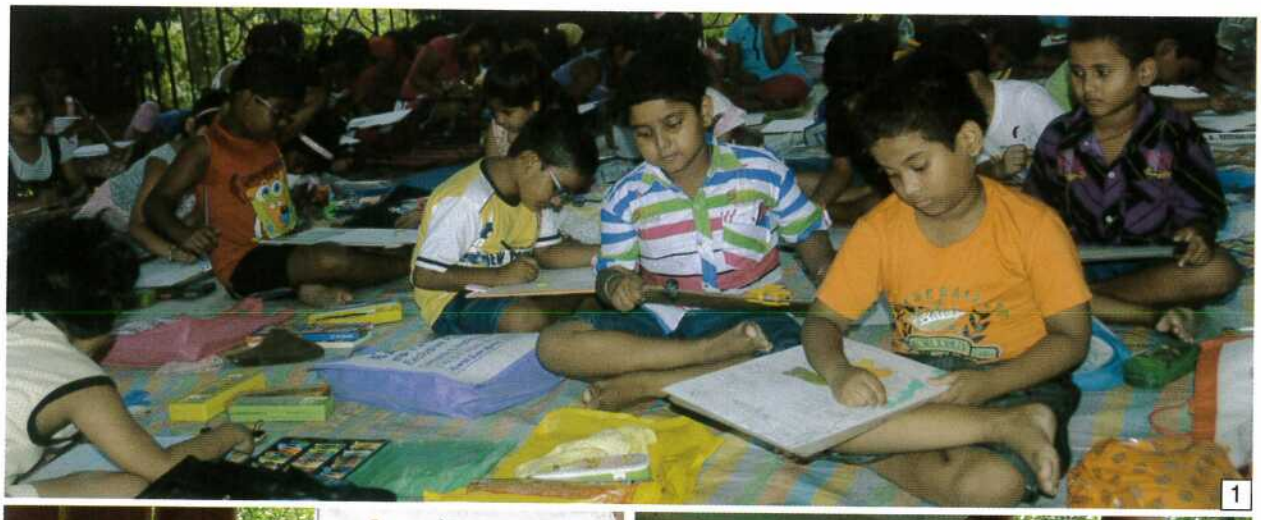

1. ए. जे. सी. बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में 5 जून 2015 विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते स्कूली बच्चे। 2. वन महोत्सव 2015 के अवसर पर प्रतिभागियों को सम्बोधित करते डॉ. पी सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण। 3. वन महोत्सव–2015 के अवसर पर पेंटिग्स का अवलोकन करते श्री भगवती प्रसाद बनर्जी, न्यायाधीश (से.नि.) कलकत्ता उच्च न्यायालय । 4. 5 जून 2015 विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग में विडियो डाक्यूमेंट्री का विमोचन करते मुख्य अतिथि एवं डॉ. ए. ए. माओ । 6. 2 अक्टूबर 2014 को आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान में शपथ दिलाकर स्वच्छ भारत अभियान का शुभारम्भ करते डॉ पी. सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ।

1. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केंद्र, गंगतोक के निरीक्षण के दौरान संसदीय राजभाषा समिति के सदस्यों को रिपोर्ट सौंपते डॉ. मोहन गंगोपाध्याय । 2. आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान में नर्सरी का निरिक्षण करते श्री अशोक लवासा, सचिव, पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, साथ में डॉ. पी. सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण एवं अन्य । 3. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के 125 वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशन अनुभाग द्वारा लगाई पुस्तक प्रदर्शनी का अवलोकन करते श्री. अशोक लवासा, आई.ए.एस., सचिव, पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय एवं श्री हेम पांडे, विशेष सचिव, ।
4. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के 125 वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित पादप वर्गिकी एवं संरक्षण पर राष्ट्रीय परिचर्चा के शुभारम्भ अवसर पर मंचासिन अतिथि गण ।
5. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय में लगी प्रदर्शनी का निरीक्षण करते मुख्य अतिथि एवं अन्य गणमान्य जन ।